

Regd. No. 21747

ISSN 2277-2014

Research Discourse

An International refereed research Journal

Vol. IV

No. 2

April-June 2014



Editor
Dr. Anish Kumar Verma

Associate Editors

Dr. Rajeev Kumar Tripathi
Dr. Santosh Kumar Tripathi

Published by :
South Asia Research & Development Institute
Varanasi, U.P. (INDIA)

Patron

Dr. Lalji Tripathi, Principal, Mariahu P.G. College, Mariahu, Jaunpur, U.P.
Ex. Prof. Gurudin, M.G.K.V.P., Varanasi, U.P.

International Editorial Board

Anna Malingdog, Asst. Prof., Deptt. of Political Science, De La Salle University, Manila, Philippines
Shoir Ajore, Phillistin

National Editorial Board

Prof. Munnial, Deptt. of Economics, MGKVP, Varanasi, U.P.
Prof. Shri Bhagwan Rai, Deptt. of Commerce, BHU, Varanasi, U.P.
Dr. Deenbandu Tiwari, Asst. Prof., Deptt. of Sociology, LBS PG College, Varanasi, U.P.
Dr. Rekha, Asso. Prof., Deptt. of Sociology, MGKVP, Varanasi, U.P.
Dr. Rajneesh, Asst. Prof. Deptt. of Sociology, SSSVS Govt. PG College, Chunar, U.P.
Dr. Anju Sihare, Asst. Prof., Deptt. of Hindi, Govt. Chhatrasal College, Pichore, M.P.
Dr. Ramesh Kumar, HOD, Deptt. of Political Science, S.D. College, Ambala, Hariyana.
Dr. Suresh Kumar Singh, HOD, Deptt. of Pol. Science, Mariahu P.G. College, Jaunpur, U.P.
Dr. H.C. Purohit, Asso. Prof., Deptt. of Management, VBSPU, Jaunpur, U.P.
Dr. Anjaneya Pandey, HOD, Deptt. of English, Mariahu P.G. College, Jaunpur, U.P.
Dr. Kaushal Kishor, Asst. Prof. in Socioology & Anthropology, A.N. Sinha Institute of Social Studies, Patna, Bihar
Mr. Surendra Pratap Singh, Asst. Prof., Deptt. of Hindi, MGKVP, Varanasi, U.P.

Advisory Board

Prof. Renuka Kumari Sinha, HOD, Deptt. of Psychology, J.P. University, Bihar.
Prof. Vasant S. Ghule, Director of Phy. Edu., S.S.K.R.I. College, Washim, Maharashtra.
Dr. Rakesh Kumar Maurya, Principal, R.D.P.G. College, S.R.N. Bhadohi, U.P.
Dr. Sushil Kumar Gautam, Head Deptt. of Phy. Edu., MGKVP, Varanasi, U.P.
Dr. Anurag Mishra, Asst. Prof., Deptt. of Pol. Sci., Mariahu P.G. College, Jaunpur, U.P.
Miss. Anajana Verma, Asst. Prof. Deptt. of History, MGKVP, Varanasi, U.P.
Dr. Chiranjeev Kumar Thakur, DLW, Varanasi, U.P.

© Editor

Published by :

South Asia Research & Development Institute

B. 28/70, Manas Mandir, Durgakund

Varanasi-221005, U.P. (INDIA)

Email : researchdiscourse2012@gmail.com

Mob. 09453025847, 08687778221

'Research Discourse': An International refereed research Journal, Published Quarterly.

Note: Scholars will be answerable to the contents of their articles.

All disputes and complaints are subject exclusively to the Jurisdiction of the courts/tribunals/forums at Varanasi Only.

I E i kndh;

भारत में राष्ट्रीय एकता का आधार है यहाँ की संस्कृति। डॉ० भीमराव अम्बेडकर ने लिखा था कि भारतवासी आपस में लड़ते झगड़ते रहते हैं लेकिन संस्कृति उन्हें बांधे रखती है। इस संस्कृति में सभी मतों, विचारों और असहमतियों का आदर है। अथर्वा ने अथर्ववेद के पृथ्वी सूक्त में गाया है कि इस पृथ्वी पर अनेक मत विश्वासी, अनेक बोलियों वाले लोग रहते हैं। यह पृथ्वी माता सबका पोषण करती है। पृथ्वी माता है, हम सब इसके पुत्र। भारतीय विचार या धर्म विश्वास दर्शन पर आधारित थे। बुद्ध के पहले भारत में संगठित धर्म सत्ता नहीं थी। बुद्ध के बाद ही धर्म संघ बना। यहाँ धर्म और पंथ, मजहब रिलीजन एक जैसे नहीं हैं। धर्म प्रकृति और मनुष्यता का संविधान है। हिन्दू धर्म, वैदिक धर्म का विकास है।

भारतीय संविधान ने अपने नागरिकों को कुछ मूलभूत अधिकार (अनुच्छेद 25— धर्म को अबाध रूप से मानने, आचरण और प्रचार की स्वतंत्रता) प्रदान किये हैं। जिसका कुछेक संगठनों ने अपने स्वार्थ के अनुरूप व्याख्या करने की कोशिश की है। अतः आज आवश्यकता है, एक कड़े कानून एवं आम समाज में सही समझ विकसित करने की। जिससे जबरन धर्मान्तरण की प्रक्रिया को पूरी तरह से रोका जा सके।

प्रस्तुत अंक के अशुद्धियों को शुद्ध करने के लिए Mk0 vkuln dɛkj Mk0 fnus'k dɛkj] Mk0 i#''kk&ke yky 'fot; * एवं अनन्य मित्र Jh vumi dɛkj ^Jfed*] Jh i'ɔt fl ɔ एवं Jh fjrs'k oekl के प्रति हृदय से कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ। प्रस्तुत अंक में रह गयी त्रुटियों के लिए हम सभी पाठकों से क्षमा प्रार्थी हैं।

अन्त में, सभी लेखकों, पाठकों एवं अन्य विद्वतजनों के प्रति हृदय से आभार प्रकट करते हुए उनसे सुझाव, सहयोग एवं आशीष की कामना करते हैं।

I E i knd

fo"k; &I pph

- 1- cnyrk i fjn" ; vksj fglnh 1&3
सुरेन्द्र प्रताप सिंह
- 2- i p k ; rka ds ek/ ; e l s L=h l 'kfädj .k 4&6
सुश्री अंजना वर्मा
- 3- fglnh dh l kfgR; d i =dkfj rk ds fodkl ea 7&10
egkohj i d kn f}onh dk ; kxnku
अभिषेक उपाध्याय
- 4- Hke .Myhdj .k ds nkj ea jktHkk"kk fglnh dh vo/kkj .kk , oafLFkfr 11&13
डॉ० सुशील कुमार राय
- 5- cQ dkyhu l ekt dk uxjhj .k ea ; kxnku 14&16
डॉ० अवधनारायण
- 6- vo/kh ds J\$B j pukdj vk | ki d kn fl g ^i nhi * 17&19
डॉ० संगीता देवी
- 7- l jdkjh o xj l jdkjh ek/ ; fed Lrj ds fo | ky; ka ea v/ ; ; ujr 20&23
fo | kfFkz; ka ea fxjraew; ka ds i fr vfHkofr dk v/ ; ; u
मंजू सैनी व डॉ० विष्णु कुमार
- 8- ekDI bknh fopkj /kkjk , oanfy r oxl 24&26
डॉ० सन्तोष कुमार पाण्डेय
- 9- MKD l Ei wkkuln vksj muds l ektoknh fopkj 27&29
डॉ० अलका शर्मा
- 10- fo" .kj gj .k ea of .kr fo" .k&HkFDr dk Lo: i 30&32
अरुण कुमार
- 11- l Ur l kfgR; ea ykd/ke l o l gt ekuo /kel 33&35
डॉ० अवधेश कुमार श्रीवास्तव
- 12- oS ohdj .k , oaHkkj r 36&40
ज्ञान सागर मिश्रा
- 13- dkedkth efgykva dk ^; ksu mRi hM-u* l s l j {k .k 41&43
मंगला प्रसाद पटेल
- 14- ^Loluokl nRre** ukVd o ml dh i kl fxdrk 44&45
पुनीता श्रीवास्तव व डॉ० शारदा सिंह
- 15- Ukkjh , oae kuokf/kdkj 46&49
डॉ० सुरजीत सिंह भदौरिया
- 16- l kekftd djhfr; ka ds mUeyu ea l kekftd vf/kfu; eka 50&51
ds Hkifedk dk ew; kadu
तेजपाल सिंह
- 17- jk"Vh; rk ds mRd"kl ea i =&i f=dkvka ds ; kxnku dk , frgkfl d v/ ; ; u 52&54
1/20oha l nh ds i fke nks n' kdkka ds fo' ksk l UnHkz esh
अतुल गुप्ता

18-	I edkyhu dfork es ukjh dh fLFkfr <i>रेनू मौर्या</i>	55&58
19-	I gdkfjrk , oaml d egRo <i>डॉ० शचीन्द्र त्रिपाठी</i>	59&61
20.	KRISHNAMURTI ON MEDITATION <i>Dr Anjaneya Pandey</i>	62-64
21.	DISABILITY AND SOCIAL SECURITY IN INDIAN PERSPECTIVE <i>Supriya Singh</i>	65-68
22.	THE ROLE OF HUMAN RESOURCE IN INDIAN ECONOMY AND DEVELOPMENT <i>Miss Kudshiya Raza</i>	67-71
23.	THE ROLE OF SCREENPLAY FOR SUPPORT OF POLITICAL PARTY : THE CASE OF DMK <i>K. Vijayakumar</i>	72-73
24.	ONLINE MARKETING VS OFFLINE MARKETING <i>Mr. Jaideep</i>	74-77
25.	WORDSWORTH AS A POET OF NATURE <i>Dr. Shardha Mishra</i>	78-79
26.	CHALLENGING DIMENSION OF LAKE : A CASE STUDY OF KECHOPALRI LAKE IN SIKKIM <i>Hasibul Rahaman & S.A.H.Moinuddin</i>	80-82
27.	INNOVATIONS IN ELEMENTARY TEACHER EDUCATION <i>Mr. Puneet Kumar & Mrs. Preeti Vashisht</i>	83-85
28.	A GREAT SOCIAL REFORMER: RAMARAYANINGAR (RAJA OF PANAGAL) <i>Sodan Singh & Dr. Ram Naresh Baghel</i>	86-88
29.	BANARAS - A HINDU CITY <i>Sharad Bhatt & Jaya bhatt</i>	89-92
30.	STRESS MANAGEMENT <i>Prof. Dr. Satish G. Ghenekar</i>	93-95
31.	THE ARCHETYPAL EXEMPLAR IN ANITA NAIR'S MISTRESS <i>Dr. Shalini Dube</i>	96-98

हिन्दी महज संवाद का साधन भर नहीं है बल्कि हमारी पहचान भी है। बदलते समाज व व्यापक होती जरूरतों के बीच हिन्दी ने तेजी से अपने पंख पसारें हैं। भूमण्डलीकरण के साथ हिन्दी भाषा का व्यापक विस्तार हुआ है। हिन्दी का यह विस्तार हिन्दी की बढ़ती शक्ति का प्रभाव है। आधुनिक संचार साधनों और तकनीक के विकास से भी हिन्दी को वैश्विक स्तर पर पहचान बनाने में सफलता मिली है।

विश्वबन्धुत्व की भावना से ओत-प्रोत वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना भारतीय संस्कृति का मूलमन्त्र है। हजारों वर्षों पहले ही भारतीय संस्कृति ने इस मत को आत्मसात कर लिया है। विभिन्न देशों की संस्कृतियों के श्रेष्ठ तत्व को अपने में समाहित कर उदात्तता प्रदान करने की शक्ति हमारी संस्कृति में विद्यमान है।

यह हमारा कोरा निराशावाद ही होगा। यदि हम यह कहते और मानते हैं कि संसार की समस्त भाषाओं में हमारी हिन्दी उपेक्षित है। अगर हम भाषा के मसले में इस उपेक्षा या उपेक्षिता शब्द को हिन्दी से निकालकर बाहर कर दें तो जो हिन्दी रहेगी, वहीं वास्तविक हिन्दी होगी।

कहना न होगा कि हिन्दी अपनी ताकत से मीडिया पर हावी हो रही है, कभी-कभी जब मीडिया हिन्दी पर हावी होने लगती है तो हिंगलिश जैसी अटपटी शैली सामने आती है जिससे बचना जरूरी है, अन्यथा आज का मीडिया हिन्दी की अनेक वर्णों विविधता का जीता-जागता आईना बन गया है।

कहते हैं कि माँ के आँचल में जन्नत बसती है जिसकी कुछ पल की पनाह के लिए भी इन्सान सब कुछ हारने को तैयार हो जाता है। मातृभाषा हिन्दी एक ऐसी ही पनाह है, जिसकी ममतामयी सिलवटों में आप भविष्य की संभावना पा सकते हैं।

आज हिन्दी की लोकप्रियता सिर चढ़कर बोल रही है। यह चीनी भाषा के बाद दूसरे स्थान पर आ गयी है। भविष्य भी हिन्दी का ही है। कल वह चीनी भाषा को पछाड़ कर नम्बर एक होने का गौरव हासिल कर ले तो आश्चर्य की बात नहीं होगी। निश्चित ही इसके लिए वे सभी संस्थाएँ और समूह साधुवाद के पात्र हैं जो हिन्दी के विकास व प्रचार-प्रसार के लिए काम कर रहे हैं। लेकिन इस तथ्य से इंकार नहीं किया जा सकता है कि बाजार ने हिन्दी की स्वीकार्यता को नई ऊँचाई दी है और पूरे विश्व को प्रभावित किया है।

यह सर्वविदित सत्य है कि जो भाषाएँ रोजगार और संवादपरक नहीं बन पाती उनका अस्तित्व खत्म हो जाता है। विभिन्न देशों की कुछ भाषाएँ अपने अस्तित्व के संकट से गुजर रही हैं तो उसके लिए उनका रोजगारपरक और संवादविहीन होना मुख्य कारण है। एक अनुमान के मुताबिक, दुनियाभर में तकरीबन 6900 मातृभाषाएँ बोली जाती हैं। इसमें से तकरीबन 2500 मातृभाषाएँ अपने अस्तित्व के संकट से गुजर रही हैं। इनमें से कुछ को चिन्ताजनक स्थिति वाली भाषाओं की सूची में रख दिया गया है। संयुक्त राष्ट्र द्वारा कराए गए एक तुलनात्मक अध्ययन से यह खुलासा हुआ है कि 2001 में विलुप्तप्राय मातृभाषाओं की संख्या जो 900 के आस-पास थी वह आज तीन गुने से भी पार जा पहुंची है। जानना जरूरी है कि दुनियाँ भर में तकरीबन दो सैकड़ ऐसी मातृभाषाएँ हैं जिनके बोलने वालों की संख्या महज दस-बारह रह गयी है।

अन्तर्राष्ट्रीय पटल पर हिन्दी आज विश्व की एक प्रतिष्ठित और मान्यता प्राप्त भाषा बनी है। वह विश्व के विभिन्न देशों में बसे हुए भारतीयों की सम्पर्क भाषा भी है। प्रवासी भारतीय हिन्दी को भारतीय अस्मिता का प्रतीक मानते हुए उसकी प्रतिष्ठा के प्रति निरन्तर प्रयासरत हैं।¹

* असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी, उ०प्र०

आज हमारे इर्द-गिर्द हिन्दी की दुर्दशा और अंग्रेजी का बखान करते कई लोग मिल जाएंगे, लेकिन सच तो यह है कि आज हिन्दी में कैरियर की कई सम्भानाएं जन्म ले चुकी हैं, दरअसल कुछेक सालों से हिन्दी को परवान देने में इसके विशाल परिक्षेत्र ने खास भूमिका निभाई है। कहने का अर्थ यह है कि आज हिन्दी दुनिया की सर्वाधिक बोले जाने वाली भाषा है, वहीं करीब 90 करोड़ लोग स्वयं भारत के अनेक राज्यों में इसे अधिकारिक भाषा का दर्जा देते हैं। इसकी समृद्धता का अंदाजा इसी बात से लगा सकते हैं कि 30 से ज्यादा बोलियाँ उत्तर मध्य भारत के शहरी, गांवों, कस्बों में प्रचलित है और तो और देश दुनिया के सर्वाधिक पढ़े जाने वाले अखबार और सर्वाधिक देखे जाने वाले टी0वी0 चैनल हिन्दी के ही हैं तो अचरज की बात नहीं है। आखिर जिस भाषा का विस्तार इतना अधिक है तो अवसर तो होंगे ही।^१

हिन्दी में अनुवादक के तौर पर काम की काफी सम्भावनाएं हैं। दूतावासों, सचिवालयों, अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिनिधिमण्डलों, कूटनीतिक मिशनों के साथ पर्यटन के क्षेत्र में भी हिन्दी अनुवादकों व दुभाषियों के लिए अच्छे अवसर हैं। हिन्दी विषय के रूप में तो छात्रों में काफी पहले से ही लोकप्रिय थी लेकिन कैरियर के बाजार में आज यही लोकप्रियता जॉब्स की शक्ल ले रही है। आप चाहे निजी क्षेत्र के साथ जुड़ें या सरकारी या स्वतन्त्र ढंग से कार्य करें, हिन्दी इन दिनों नई एवं ताजा संभावनाओं से लबरेज है। यही कारण है कि आज सभी हिन्दी सीख रहे हैं।

देशभर के विज्ञापक पहले ही मान चुके हैं कि हिन्दी के पाठक वर्ग के पास खरीद की ताकत आ चुकी है, और वह यहाँ नगरों में तेजी से उभरते हुए शॉपिंग माल्स में जाकर कॉफी पीने से लेकर ब्राण्डेड वस्त्र खरीदने का शगल कर सकता है।^२ सन 2006 के एक आंकड़े के अनुसार, हिन्दी की पत्र-पत्रिकाओं में साल में करीब 1500 करोड़ रुपये के विज्ञापन छप रहे हैं। चूंकि बड़े शहरों का बाजार संतृप्त हो गया है इसलिए विज्ञापन छोटे शहरों, ग्रामीण और अर्द्ध-ग्रामीण इलाकों पर जोर दे रहे हैं, जहाँ केवल हिन्दी प्रेस का ही बोलबाला है।^३

पिछले पचास वर्षों में बौद्धिक-राजनीतिक साहित्य हिन्दी में खूब प्रकाशित हुए हैं। सम्पूर्ण लोहिया साहित्य, सम्पूर्ण गांधी वांगमय, सर्वोदयी साहित्य, धर्म साहित्य और बड़े-बड़े पैमाने पर मार्क्सवादी साहित्य पहले से ही हिन्दी के पास मौजूद हैं।

हिन्दी के नए मानचित्र में समाजविज्ञान द्वारा मान्य रंगों की भी खासी बहुतायत है। मसलन समाज में लगातार बढ़ते हुए राजनीतिकरण की प्रक्रिया ने हिन्दी को उन मंचों पर आसीन कर दिया है, जहाँ पहले उसकी आवाज अदाबाजी में दब जाती थी। ये मंच हैं विधायिकाओं के यानी लोकसभा, राज्यसभा और विधानसभाओं के। सत्तर की दहाई से ही यह सिलसिला धीरे-धीरे बढ़ रहा है। शूद्र और दलित जातियों के राजनीतिक उभार ने हमारी विधायिकाओं में हिन्दी बोलने वालों को भर दिए हैं।^४ वे बेहिचक तरह-तरह हिन्दी के लहजों में बहस करते हैं। हालाँकि विधायिकाओं में आशु-अनुवाद की मशीनी व्यवस्था होती है; पर हिन्दी वालों की बढ़ती हुयी संख्या की बातें मूल रूप से समझने के लिए गैर हिन्दी भाषी सांसदों के बीच हिन्दी सीखने की जरूरत का एहसास बढ़ता जा रहा है।

अगर आपको अपनी राष्ट्रभाषा से प्यार है तो हिन्दी अपनाएँ, अपनी भाषा के ध्वजवाहक बनें...। ऐसे बहुत सारे टूल्स और एप्लीकेशन्स हैं जिनकी मदद से आप अपने कम्प्यूटर पर हिन्दी में काम कर सकते हैं मेल कर सकते हैं, और यहाँ तक कि मोबाइल पर भी हिन्दी में मैसेज का लेन-देन कर सकते हैं। टेक्नोलॉजी में हिन्दी को अपनाएँ और गौरव के साथ अपनी पहचान बनाएँ।^५

आज हिन्दी भाषा अफसरों की जुबान में तब्दील हो रही है। यहाँ ऐसे कई क्षेत्र हैं, जहाँ आप अपनी शानदार हिन्दी के बदौलत धूम मचा सकते हैं।

आज के हार्डटेक दौर में भी लोगों की पढ़ने की आदत खत्म नहीं हुई है। ऐसे में उनके लिए बेहतर से बेहतर कंटेण्ट निर्माण एक सम्भावनाओं वाला क्षेत्र है। यदि आप भी हिन्दी रचनात्मक लेखन में रुचि रखते हैं तो यहाँ छोटे-छोटे किस्से, कहानियों, कविताओं, लेखों से शुरू करके उपन्यास प्रकाशन तक में अपना हाथ आजमा सकते हैं।^६

कोई कुछ कहे, लेकिन मातृभाषा, मातृभाषा होती है। हम बाहर से कितने ही आडम्बर कर लें कितना ही पश्चिम की रौ में बहते दिखें, लेकिन असलियत तो यह है कि हमसे अधिकतर के वैचारिक चिन्तन को

ऊर्जा, मातृभाषा के सोते से ही फूटती है। पिछले कुछ सालों से बाजार ने इस विचारधारा को तेजी से अपनाया है। तभी तो तमाम विरोधाभाषों के बावजूद हिन्दी की अपनी जमीन पहले से मजबूत हुई है। खैर, आज तो स्थिति यह है कि हिन्दी देश व क्षेत्र की सीमाओं से परे अपनी वैश्विक पहचान बना रही है।

अगर वैश्विक भाषा अंग्रेजी के फैलाव की बात करें तो निःसन्देह उसके ढेर सारे कारण हो सकते हैं; लेकिन वह शानदार संवाद और व्यापारिक नजरिए के कारण भी अपना विश्वव्यापी चरित्र गढ़ने में सफल रही है। आज हिन्दी भाषा भी उसी चरित्र को अपनाती दिख रही है। यह विश्व संवाद की एक सशक्त भाषा के तौर पर उभर रही है और विश्व समुदाय उसका स्वागत कर रहा है। कभी भारतीय ग्रन्थों, विशेष रूप से संस्कृत भाषा की गम्भीरता और उसकी उपादेयता और संस्कृत कवियों व साहित्यकारों की साहित्यिक संरचना की मीमांसा करने वाला यूरोपीय देश जर्मनी संस्कृत भाषा को लेकर आत्ममुग्ध हुआ करता था। अब जर्मन लोग हिन्दी को एशियाई आबादी के एक बड़े तबके से सम्पर्क साधने का सबसे दमदार हथियार मानने लगे हैं।

भाषा एवं साहित्य सृजन का कार्य मात्र भारत में ही सम्पन्न नहीं हो रहा है, बल्कि विश्व के कई प्रवासी भारतीयों तथा विदेशियों द्वारा भी हो रहा है। आज भारतीय संस्कृति विश्व संस्कृति को प्रभावित कर रही है। विश्व भाषा के रूप में हिन्दी के अधिकाधिक प्रचार-प्रसार हेतु विभिन्न संस्थाएं और व्यक्तियों ने समय-समय पर सुझाव दिए हैं और दे रहे हैं।⁸

यूरोप से ही तकरीबन दो दर्जन पत्र-पत्रिकाएं प्रकाशित होती हैं। सुखद यह है कि पाठकों की संख्या लगातार बढ़ती जा रही है। एक सर्वेक्षण के मुताबिक, आज विश्व में आधा अरब लोग हिन्दी बोलते हैं और तकरीबन एक अरब लोग हिन्दी बखूबी समझते हैं। वेब, विज्ञापन, संगीत, सिनेमा और बाजार ऐसा कोई क्षेत्र नहीं है जहाँ हिन्दी अपने पांव पसारती न दिख रही हो। वैश्वीकरण के माहौल में अब हिन्दी विदेशी कम्पनियों के लिए भी लाभ की एक आकर्षक भाषा व जरिया बन गयी है। उन्हें अपने उत्पादों की बड़ी आबादी तक पहुंचाने के लिए हिन्दी को अपना माध्यम रास आ रहा है। यानी पूरा कॉरपोरेट कल्चर ही अब हिन्दीमय होता जा रहा है। हिन्दी के बढ़ते दायरे से उत्साहित सरकार की संस्थाएं भी जो कभी हिन्दी के प्रचार-प्रसार में खानापूर्ति करती देखी जाती थीं, वे अब तल्लीनता से हिन्दी दिवस, हिन्दी सप्ताह और हिन्दी पखवारा मना रही हैं। हिन्दी भाषा के विकास और उसके फैलाव के लिए यह शुभ संकेत है।

हिन्दी के प्रचार-प्रसार को लेकर शोक जताने, छाती पीटने और बेवजह आँसू टपकाने की जरूरत नहीं है। हिन्दी अब दायरे से निकलकर विश्व जगत को आश्चर्यचकित एवं प्रभावित कर रही है। एक भाषा के तौर पर हिन्दी ने विविध क्षेत्रों में अपनी जड़ों को मजबूत किया है। विगत दो दशकों में जिस तेजी से हिन्दी का अन्तर्राष्ट्रीय विकास हुआ है और लोगों का हिन्दी के प्रति रुझान बढ़ा है वह उसकी लोकप्रियता को रेखांकित करता है। शायद ही विश्व में किसी भाषा का हिन्दी की तर्ज पर इस तरह फैलाव हुआ है।

I UnHkz %

1. भाषा की अस्मिता और हिन्दी का वैश्विक सन्दर्भ, सम्पादक- रवीन्द्र कालिया, हिन्दी अनुभाग, विदेश मन्त्रालय, भारत सरकार, 2012, पृ. 132
2. दैनिक जागरण, जोश, हिन्दी दिवस पर विशेष, बुधवार, 12 सितम्बर 2012, पृ. 2
3. इकानॉमिक टाइम्स, (ब्राण्ड इक्विटी), दिल्ली में छपा आधा पन्ने का विज्ञान, 8 जून 2005
4. बिजनेस स्टैण्डर्ड, 29 सितम्बर 2006 में छपी शुचि बंसल की खबर हिन्दी पेपर राइड मार्केट बूम
5. रंजीत साउ, फ्राम संस्कृताइजेशन टू हिन्दी-आइजेशन एण्ड हिन्दू-आइजेशन, ई0पी0डब्ल्यू0, 1
6. 23 अक्टूबर, 19916. दैनिक जागरण, सप्तरंग, हिन्दी है तो हम हैं, 14 सितम्बर 2012, पृ. 12
7. वही, पृ. 1
8. भाषा की अस्मिता और हिन्दी का वैश्विक सन्दर्भ, सम्पादक- रवीन्द्र कालिया, हिन्दी अनुभाग, विदेश मन्त्रालय भारत सरकार, 2012 पृ0 133

हम जब अपने अतीत पर नजर डालते हैं तो देखते हैं कि भारत में गार्गी, अपाला जैसी प्रसिद्ध महिला दार्शनिक थी जो सभा में पुरुषों के बीच बैठकर संवाद में हिस्सा लिया करती थी। हमारे स्वाधीनता आंदोलनों में भी महिलाओं का योगदान पुरुषों से कम नहीं था। आजादी के बाद भी संविधान सभा के सदस्य के रूप में महिलाओं ने संविधान का मसौदा तैयार करने में अपनी भूमिका निभायी। साथ ही यह बात हम गर्व से कह सकते हैं कि डॉ. अम्बेडकर के प्रस्ताव पर ही संविधान ने शुरू से ही महिलाओं को वोट देने का अधिकार दिया। गांधी जी का मानना था कि आजादी की शुरुआत निचले स्तर से होनी चाहिए। गांधी जी के अनुसार "मैं ऐसे भारत के लिए कोशिश करूंगा जिसमें गरीब से गरीब आदमी भी यह महसूस करे कि यह उसका देश है, जिसके निर्माण में उसकी आवाज का महत्व है, उसमें स्त्रियों को पुरुषों के समान अधिकार मिलेंगे। सारी दुनिया में हमारा संबंध शान्ति और भाईचारे का होगा। यही है मेरे सपनों का भारत"। लेकिन क्या हम आजादी के बाद गांधी जी के सपनों को पूरा करने में सफल रहे हैं?

वर्तमान समय में नारीवाद समाज विज्ञान तथा मानविकी क्षेत्र में एक सबसे बड़ा मानवीय हस्तक्षेप है यह पुरुषों के साथ-साथ नारी को भी उनके समान अधिकार देने का आन्दोलन है। यह सशक्तिकरण पुरुष निरपेक्ष नहीं बल्कि सापेक्ष विमर्श है और इसके लिए पुरुष को भी लचीला और उदार होना पड़ेगा। आजादी के बाद भी महिलाओं की स्थिति दयनीय रही है। हमारी राजनीतिक प्रणाली में उनको वोट देने का अधिकार तो है परन्तु प्रशासन में उनकी भूमिका न के बराबर है।

गांधी जी मानते थे कि सच्चा लोकतंत्र वही है जो निचले स्तर पर लोगों की भागीदारी पर आधारित हो और यह तभी हो सकता है जब गांव में रहने वाले आम आदमी को भी शासन से सम्बन्धित फैसला करने का अधिकार मिले। गांधी जी ने अपने पत्र 'हरिजन' में लिखा था कि "सच्चे लोकतंत्र का परिपालन केन्द्र में बैठे व्यक्तियों द्वारा नहीं हो सकता। इसका क्रियान्वयन हर गांव के लोगों द्वारा ही होना चाहिए।" पंचायत की संकल्पना हमारे समाज में वर्षों से मौजूद रही है तथा पंचायतो के प्रति विश्वास और सम्मान का भाव प्राचीन समय से बना हुआ है। पंचायती राज व्यवस्था में 73वें संविधान संशोधन के बाद लागू इस नये कानून के बाद देश में सत्ता के विकेन्द्रीकरण की दिशा में एक नये युग का सूत्रपात हुआ। इससे जहां गांवों में सत्ता समीकरणों में परिवर्तन हुआ, वही नियमों में लचीलापन रखा गया ताकि स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार कुछ फेरबदल करके कारगर रूप से लागू किया जा सके। किन्तु इस कानून की सबसे बड़ी विशेषता थी सभी पंचायती राज संस्थाओं में अनुसूचित जातियों और जनजातियों के लिए उनकी जनसंख्या के अनुसार सीटों का आरक्षण देना और इससे भी बड़ा प्रावधान था कुल सीटों की एक तिहाई सीटें महिलाओं के लिए आरक्षित करना। इस प्रावधान को प्रस्तुत करते हुए ग्रामीण विकास राज्यमंत्री ने कहा था कि "हमने प्रत्येक स्तर पर कम से कम एक तिहाई आरक्षण का प्रावधान रखा है, लेकिन इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि महिलाएं हमारी आबादी का आधा हिस्सा हैं, इस आरक्षण को भी अपर्याप्त कहा जायेगा।" लेकिन जब महिलाओं के लिए एक तिहाई सीटों का प्रावधान किया गया था तो किसी ने सोचा नहीं था कि यही एक कदम ग्रामीण स्त्रियों के सशक्तिकरण और गांवों की स्थिति सुधारने के लिए इतना महत्वपूर्ण बन जायेगा। जहां तक स्त्रियों की

स्थिति का सवाल है तो 1990 का दशक बेहद महत्वपूर्ण रहा क्योंकि पिछले 20 वर्षों में स्त्रियों की स्थिति और चेतना में व्यापक बदलाव व विकास हुए हैं।

शुरू-2 में पंचायत संस्थाएँ समाज के प्रभुत्व वर्ग की इच्छाओं और आकांक्षाओं की पूर्ति का माध्यम हुआ करती थी। अब वे सच्चे अर्थों में ग्राम स्वराज्य की इकाई बनती दिखायी दे रही है। सर्वेक्षण से यह बात सामने आयी है कि महिला पंचायतों में साक्षर महिलाओं की अच्छी संख्या है और निरक्षर महिलाएं भी अपना कार्य अच्छी तरह करती हैं, उनका प्रदर्शन पुरुष प्रतिनिधियों से किसी रूप में कम नहीं है, संयुक्त राष्ट्र की एजेंसी यू.एन.एफ.पी.ए. ने अपनी रिपोर्ट में यह बताया कि शुरू में महिला आरक्षण और उसके चुनाव का मजाक उड़ाया जाता था, किन्तु आज स्थितियां बिल्कुल अलग हैं। रिपोर्ट भारत में पंचायतों में आरक्षण के फलस्वरूप महिलाओं में उपजी नयी चेतना की सराहना भी की गयी है। आज महिला पंचायतों में अनुसूचित जातियों और जनजातियों की महिलाएं भी आगे आ रही हैं। हरियाण में एक पंचायत (फिरोजपुर झिरका की नीमखेड़ा पंचायत) ऐसी भी है जिसके सभी पदों पर महिलाएं विराजमान हैं। इस तरह आज सभी राज्यों में पंचायतों के माध्यम से महिलाएं नए उत्साह व स्फूर्ति के साथ विकास गतिविधियों में योगदान कर रही हैं।

पंचायतों में नियुक्त महिलाएं एक तरफ अपनी व्यक्तिगत समस्याओं को सुलझाती हैं, वही दूसरी ओर पंचायतों में सौहार्दपूर्ण माहौल बनाये रखने का काम करती हैं। सत्ता में भागीदारी की यह मात्रा केवल संख्या या अनुपात तक सीमित नहीं है। पंचायतों में ग्रामीण महिलाओं की उपस्थिति से उनमें आत्म-विश्वास बढ़ा है। वे अब पारंपरिक घरेलू भूमिका से अलग एक नयी भूमिका गढ़ते नजर आ रही हैं। इन महिलाओं ने सत्ता के जातीय समीकरण को ही नहीं, बल्कि सामाजिक और आर्थिक समीकरण को भी बदल दिया है। महिला बीपीएल उम्मीदवारों की भागीदारी इस बात का सूचक है कि ग्रामीण स्तर पर सरकारी कार्यक्रमों और सर्वजनिक पूर्वाग्रह तथा मनमानी कम हो सकेंगे। यह हमारे समाज व राजनीति के लिए शुभ लक्षण है। पंचायतीराज संस्थाओं में महिला सहभागिता से न केवल दोपहर का भोजन कार्यक्रम, सर्वशिक्षा अभियान, ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन, रोजगार गारंटी योजना आदि के क्रियान्वयन में परिवर्तन आया है। उनमें अन्याय, दमन और शोषण के विरुद्ध आवाज उठाने की हिम्मत बढ़ी है। वे अपने अधिकारों के प्रति सचेत हुयी हैं। इस तरह ग्रामीण महिलाओं के व्यक्तित्व में भी परिवर्तन आया है, उनका सम्मान बढ़ गया है और जो आदमी पहले उनके सुझावों की अनदेखी करते थे वे अब उनकी बातों को गंभीरता से लेते हैं और उनसे समानता का बर्ताव करते हैं। इस सम्मान और प्रतिष्ठा के चलते वे गांवों के विवादों को भी निपटाने लगी हैं। पंचायतों में भ्रष्टाचार पर रोक लगाने में मदद मिली है। इसके अलावा सरकारी कल्याणकारी तथा रोजगार देने वाले कार्यक्रमों को अधिक कारगर ढंग से लागू किया जा रहा है। इससे रचनात्मक कार्यक्रमों में उनकी भागीदारी बढ़ी है। उनमें राष्ट्र और समाज के प्रति अपनी जिम्मेदारी का भाव भी विकसित हुआ है। इस तरह भारत में एक मौन लोकतांत्रिक क्रांति हो रही है जो अभी राष्ट्रीय स्तर सार्वजनिक रूप से भले ही दिखायी नहीं दे रही है पर उसकी धीमी आंच भारतीय लोकतंत्र को मजबूत बना रही है। यह क्रांति देश में सत्ता-विमर्श के ढाँचे में भी बदलाव ला रही है। पंचायत स्तर पर इतनी बड़ी संख्या में महिलाओं की सहभागिता में स्थानीय स्तर पर सामुदायिक जीवन और उसकी चेतना तथा संस्कृति में भी परिवर्तन लाया है। लेकिन एक मत यह भी है कि महिलाओं के स्वावलम्बन और स्वतंत्रता से चिढ़कर ही कुछ सिरफिरे लोग बलात्कार तथा अन्य प्रकार के हिंसक वारदात करने पर उतारू हो रहे हैं। भारत में वर्तमान समय में पुरुष प्रधान समाज है, जिसके चलते महिलाओं की स्थिति दयनीय है और यदि भारत में नवीनता लाना है तो महिलाओं के सम्बन्ध में उचित निर्णय लेने की आवश्यकता है। 2011 की जनगणना के अनुसार, भारत की कुल साक्षरता दर 74 प्रतिशत है जिसमें पुरुष साक्षरता 82.44 प्रतिशत तथा महिला साक्षरता 65.46 प्रतिशत है जो भारतीय महिला आबादी के अनुपात में बहुत कम है। आज भी कुल भारतीय महिलाओं में 34.54 प्रतिशत महिलाएं निरक्षर हैं। अतः महिलाओं के विकास में शिक्षा व रोजगार महत्वपूर्ण निर्धारक तत्व हैं। शिक्षा महिलाओं को सामाजिक निर्णय लेने में सक्षम

बनाती है वर्ल्ड बैंक रिपोर्ट में बताया गया है कि शिक्षित महिलाएं उत्पादकता, आय एवं आर्थिक विकास के साथ-साथ स्वस्थ एवं सुपोषित जनसंख्या के निर्माण में सहायक है।

देश में जिस तरह ई-गवर्नेंस शुरू हो रहा है, उसका सकारात्मक असर पंचायतों पर पड़ेगा इसके लिए महिला पंचायत प्रतिनिधियों को भी प्रशिक्षित किया जाना है और यह काम अनेक स्वयंसेवी संगठनों की मदद से चल रहा है।

पंचायतों में महिलाओं का आरक्षण उनके सशक्तिकरण एवं ग्रामीण समाज के विकास के अनेक द्वारा खोल रहा है। नजमा हेपतुल्ला के अनुसार "आरक्षण से महिला की व्यवस्था और सत्ता में भागीदारी बढ़ेगी और वह जागरूकता होगी।" फिर भी यह सही है कि सिर्फ ग्राम संस्थाओं में आरक्षण देने से उनकी स्थिति में सुधार नहीं होगा अपितु पुरुष प्रधान समाज को महिलाओं के प्रति अपना दृष्टिकोण बदलना होगा। स्त्री-विमर्श की प्रामाणिक लेखिका अर्चना वर्मा के शब्दों में "प्रश्न पुरुष पर निर्भरता से मुक्ति का नहीं, अपितु पुरुष का दृष्टिकोण बदल पाने का है, जिससे कि निर्भरता में भी सम्माननीय रहा जा सके।" महिलाओं को राजनीतिक रूप से सशक्त करने के लिए पुरुषों की वर्तमान भागीदारी के स्तर को हासिल करने के लिए महिलाओं को आगे आना होगा। इसके लिए पुरुष की संकुचित मनोवृत्ति में परिवर्तन करने की अथवा हृदय परिवर्तन की आवश्यकता है। जबसे महिलाओं ने ग्रामसभाओं की कमान अपने हाथों में ली है तब से उनके पतियों को उनके नाम से जाना जाता है। इस तरह महिला प्रतिनिधियों को ग्रामीण भारत में दीप स्तम्भ की तरह चारों ओर चेतना और कार्यकुशलता की रोशनी फैलानी होगी। लड़कियों से भेदभाव और भ्रूण हत्या जैसी पनप रही समस्याओं का सामना भी उन्हें करना होगा।

इस क्षेत्र में महिलाओं द्वारा सामना की जाने वाली प्रमुख बाधाएँ हैं – (1) राजनीति का अपराधीकरण (2) राजनीतिक संस्कृति। यह सही है कि केवल राजनीतिक सशक्तिकरण से ही महिलाओं का सशक्तिकरण नहीं होगा। इसके लिए सहयोग व सामंजस्य की जरूरत है उन्हें सशक्त करने के लिए स्कूलों, कालेजों में उनके दाखिले का प्रतिशत बढ़ाना होगा तथा स्वास्थ्य सुविधाएं एवं पौष्टिक आहार की मात्रा बढ़ानी होगी। इस तरह यहाँ के अनुभव के बल पर वे अपने आपको विधानसभाओं और लोकसभाओं में जाने के लिए तैयार कर सकेंगी एवं यहां भी 33 प्रतिशत आरक्षण का विधेयक पारित होना ही है। तभी एक सही अर्थों में महिला सशक्तिकरण के लक्ष्य का प्राप्त किया जा सकेगा।

16 फरवरी 2008 को पटना में 'मुख्यमंत्री कन्या विवाह योजना' नामक कार्यक्रम के उद्घाटन के समय भारत की भूतपूर्व राष्ट्रपति डॉ. प्रतिभा देवी सिंह पाटिल के भाषण से ली गयी पंक्तियाँ जो भारतीय महिलाओं की आकांक्षों को अभिव्यक्त करती है –

हटा दो सब बाधाएं मेरे पथ की, मिटा दो आशंकाएं सब मन की,

जमाने को बदलने की शक्ति को समझो, कदम से कदम मिला के चलने तो दो मुझको।

I UrHkz %

1. रेखा कस्तवार, 2013; स्त्री चिन्तन की चुनौतियाँ, दिल्ली
2. ए.एस. अल्तेकर, पोजीशन ऑफ वूमन, पृ. 12
3. बी.एस. उपाध्याय, वूमन इन ऋग्वेद, पृ. 183
4. मधु किश्वर, गाँधी ऑन वीमेन, पृ. 9
5. सिमॉन द बोउआ, 1998; स्त्री उपेक्षिता, पृ. 325
6. मंजू जैन, कार्यशील महिलाएँ एवं सामाजिक परिवर्तन, जयपुर
7. डॉ. प्रभा आपटे, 1996; भारतीय समाज में नारी, जयपुर

fglunh dh | kfgfR; d i =dkfj rk ds fodkl ea egkohj i z kn f}onh dk ; kx nku

vfhk"ksd mi k/; k; *

पत्रकारिता और साहित्य के बीच अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। जिस साहित्य में सजगता न हो वह समाज के लिए उपयोगी नहीं हो सकता और यदि पत्रकारिता में सरसता न हो तो वह समाज पर स्थायी प्रभाव नहीं छोड़ सकती। साहित्यिक पत्रकारिता में पत्रकार की सजगता और साहित्य की सरसता दोनों होती हैं। टालस्टाय के अनुसार साहित्य का मूल-लक्षण प्रेशणीयता है। पत्रकारिता का मूल लक्षण भावों और विचारों का सटीक एवं व्यापक सम्प्रेषण है। मानव मात्र में एकता एवं भातृत्व की भावना स्थापित करना साहित्य का एक प्रमुख लक्ष्य है। और यहीं लक्ष्य लेकर हर युग की पत्रकारिता भी चलती है।¹

साहित्य और पत्रकारिता एक दूसरे के पूरक हैं। दोनों में अन्तर भी है तो केवल शैली का जिसे हम साहित्य कहते हैं वह काफी चिन्तन-मनन के बाद लिखा जाता है और पत्रकारिता शीघ्रता में लिखा गया साहित्य है। समय और समाज के साथ तालमेल बिठाकर चलना पत्रकारिता का गुण है जिसमें जीवंत अभिव्यक्ति यथार्थ पर आधारित होता है जबकि साहित्य लोकमंगल की चेतना, 'सत्यम् शिवम् सुन्दरम्' की सुचिन्ता पर आधारित है। साहित्यिक पत्रकारिता का हिन्दी साहित्य के विकास और संवर्द्धन में विशेष महत्व रहा है। पत्रकारिता और साहित्य को लेकर निरन्तर मंथन चलता रहता है। कुछ विद्वानों का कहना है कि, सर्वोत्तम पत्रकारिता साहित्य है और सर्वोत्तम साहित्य पत्रकारिता है।

वर्नार्ड शॉ का विचार है – कि कुशल पत्रकार साहित्यकार से भिन्न नहीं है अगर साहित्य का काम विश्व को ठीक से देखना और परखना है तो पत्रकारिता का भी पहला कार्य यही है।² हिन्दी का पहला समाचार पत्र 1826 में 30 मई के दिन कलकत्ता से पं० युगल किशोर शुक्ल के संपादन में साप्ताहिक 'उदन्त मार्तण्ड' निकला था। पर वह अंग्रेजी हुकूमत का शीघ्र ही कोपभाजन हो जाने के कारण 4 दिसम्बर 1827 को बंद हो गया बनारस से 1845 में 'बनारस अखबार' का सम्पादन शिवप्रसाद की सहायता से गोविन्द रघुनाथ यत्ने ने किया जिसे हिन्दी-प्रदेश का पहला हिन्दी पत्र मानने में आपत्ति है क्योंकि नागरी अक्षरों के बावजूद उसकी भाषा शैली फारसी शब्दों से बोझिल उर्दू थी। इस दृष्टि से काशी से ही एक साथ बंगला और हिन्दी में प्रकाशित तारामोहन मैत्र के सुधाकर (1850) को हिन्दी क्षेत्र का पहला हिन्दी पत्र माना जाता है जो 1953 से एकमात्र हिन्दी में प्रकाशित होने लगा था। इसी दौर के अन्य महत्वपूर्ण पत्रों में 1855 में आगरा से प्रकाशित राजा लक्ष्मण सिंह के 'प्रजाहितेशी' का और 1857 में दिल्ली से पहले उर्दू और बाद में हिन्दी में प्रकाशित होने वाले सदर के नेता अजीमुल्ला खाँ के 'पयामेआजादी' का नाम विशेष उल्लेखनीय है। ये सभी पत्र साप्ताहिक थे।

कलकत्ता से 1854 में समाचार 'सुधावर्षण' हिन्दी का पहला दैनिक पत्र था। जिसे एक बंगाली सज्जन श्यामसुन्दर सेन के सम्पादकत्व में निकला था। इसी समय हिन्दी के आदि पत्रकार पं० युगल किशोर शुक्ल 'सामदन्तमार्तण्ड' प्रकाशित किया। इन पत्रों को आर्थिक संकट झेलना पड़ा, इसके बावजूद साहित्यिक पत्रकारिता का वातावरण तैयार करने की दृष्टि से ये सभी पत्र प्रेरक-शक्ति का काम कर गए।³

हिन्दी की पत्रकारिता का दूसरा दौर भारतेन्दु से शुरू होता है। डॉ० रमेश कुमार जैन के अनुसार "भारतेन्दु जी का हिन्दी पत्रकारिता में वहीं स्थान है जो बंगला पत्रकारिता में राजाराम मोहन राय का

*शोध छात्र, हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, उ०प्र०

है। इस काल में 350 से अधिक पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन हुआ। मासिक पत्रों में सामयिक विषयों पर निबन्ध, वार्ताएं तथा उपन्यास का स्थान दिया जाता था।⁴

राम रतन भटनागर के शब्दों में – भारतेन्दु हरिश्चन्द्र हिन्दी साहित्य के जन्मदाता नहीं है वह हिन्दी पत्र-सम्पादन कला के जन्मदाता है।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने स्वयं तीन पत्रों का सम्पादन किया था प्रथम 15 अगस्त 1868 को काशी से 'कविवचन सुधा' का प्रकाशन प्रारम्भ किया। इस पत्रिका में प्राचीन साहित्यिक ग्रंथों के प्रकाशन से लेकर हिन्दी काव्य परम्परा का पाठकों को रसास्वादन कराया यह पत्रिका शीघ्र ही मासिक से पक्षिक और फिर साप्ताहिक हो गयी थी।

इस पत्रिका में उस समय के मूर्धन्य लेखकों की रचनाएँ प्रकाशित होती थी जैसे कवि देव का अष्टयाम, जायसी का पद्मावत, कबीर का साखी, बिहारी के दोहे आदि प्रकाशित किया गया। 15 अगस्त 1973 को 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' का नाम बदलकर 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' नाम से प्रकाशित किया गया भारतेन्दु ने 1 जनवरी 1874 को 'बालबोधिनी' पत्रिका का प्रकाशन किया वह महिलाओं पर आधारित पत्र था।⁵

1 सितम्बर 1877 में 'हिन्दी प्रदीप' मासिक का प्रकाशन प्रयाग से हुआ था। इसके संपादक भारतेन्दु मण्डल के वरिष्ठ पण्डित बालकृष्ण भट्ट थे। भारतेन्दु ने इस पत्र का उद्घाटन किया था। यह साहित्यिक, सामाजिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक पत्रिका थी। पत्रिका के प्रथम अंक में हिन्दी भाषा पद्य में लेखन प्रकाशित हुआ था।

“निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति के मूल”

का मंत्र इसी भाषण में दिया गया था।⁶

'हिन्दी प्रदीप' का हिन्दी साहित्य के इतिहास में क्रांतिकारी भूमिका रही है इसने हिन्दी पत्रकारिता को नयी दिशा प्रदान किया।⁷ इस काल में कई महत्वपूर्ण पत्रिकाओं का प्रकाशन हुआ।

1877 'मित्रविलास' प० मुकुन्दराम, 1877-78 'भारतमित्र' छोटूलाल मिश्र एवं कदरदत्त शर्मा) 13 जनवरी 1878 'सारसुधानिधि' (संयुक्त संपादन सदानन्द दुर्गाप्रसाद, गोविन्दनारायण, शम्भूनाथ) 1880 'उक्तिवक्ता' प० दुर्गाप्रसाद मिश्र, 1881 'आनन्दकादम्बिनी' (बद्रीनारायण चौधरी प्रेमधन 1882 'देश हितैशी' (मुन्नी लाल शर्मा) 1882 भारतेन्दु गोस्वामी ज्वाला प्रसाद व वृन्दावन) 15 मार्च 1883 ब्राह्मण प० प्रतापनारायण मिश्र 1883 'नागरीचीरद' (बद्रीनारायण चौधरी प्रेमधन) 1884 'पीयूष-प्रवाह' (अम्बिका प्रसाद व्यास) समाआलोचना -1902 जयपुर, सम्पादक चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, देवनागर - 1907 मासिक, कलकत्ता सं. उमापतिदत्त शर्मा, इन्दु - 1909, मासिक काशी, सं. अम्बिका प्रसाद गुप्त, मनोरंजन, 1912, मासिक शाहबाद, सं. ईश्वरी प्रसाद शर्मा, प्रभा, 1913, मासिक खण्डवा, माखनलाल चतुर्वेदी, अभ्युदय 1907, प्रयाग सं. पं. मदन मोहन मालवीय, प्रताप, कानपुर 1910 सं. गणेश शंकर विद्यार्थी, मर्यादा 1911, प्रयाग सं. कृष्णकान्त मालवीय आदि पत्रिकाएँ थी जिससे हिन्दी पत्रकारिता का विकास होता रहा है।⁸

भारतेन्दु युग की पत्रकारिता पर विचार करते हुए डॉ० राम विलास शर्मा ने लिखा है कि – इस युग की पत्रकारिता का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष यह है कि शुद्ध साहित्यिक पत्रिकाओं का प्रकाशन तथा हिन्दी भाषा के परिमार्जन के साथ-साथ जनता में जागरण की भावना जागृत करना। जिससे राष्ट्रहित में साहित्यिक पत्रकारिता का स्वर नये जोश से गुंजायमान हो उठा।⁹

हिन्दी पत्रकारिता का द्विवेदी युग का नेतृत्व आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी कर रहे थे। 'सरस्वती' हिन्दी की पहली साहित्यिक पत्रिका के रूप में प्रतिष्ठित हुई। इस पत्रिका का सम्पादन-भार ग्रहण करने का अनुरोध इंडियन प्रेस प्रयाग के संस्थापक श्री चिन्तामणि घोष ने अगस्त 1899 में नागरी प्रचारिणी सभा में किया था इस पत्रिका के संपादन समिति में जगन्नाथदास रत्नाकर, राधाकृष्ण दास, श्यामसुन्दर दास, किशोरी लाल गोस्वामी और कार्तिक प्रसाद खत्री आदि अनुभवी तथा ख्याति प्राप्त पत्रकार एवं साहित्यकार थे। प्रारम्भ में इसका प्रकाशन काशी से होता रहा। 1903 ई० में महावीर

प्रसाद द्विवेदी इसके संपादक बने तो 'सरस्वती' ने धर्म, भाषा, कला, संस्कृति आदि के क्षेत्र में विशेष कार्य किया।

डॉ० रामविलास शर्मा ने 'सरस्वती' का महत्व को बतलाते हुए लिखा है कि सरस्वती सबसे पहले ज्ञान की पत्रिका थी। वह हिन्दी नवजागरण का मुख्य पत्र थी और हिन्दी जनता की सर्वमान्य जातीय पत्रिका थी। ज्ञान की पत्रिका होने के आलावा वह कलात्मक साहित्य की पत्रिका थी, इसलिए उसने हिन्दी साहित्य में और उसके बाहर व्यापक स्तर पर भारतीय साहित्य में वह प्रतिष्ठा प्राप्त की थी जो बीसवीं सदी के अन्य किसी पत्रिका को प्राप्त न हुई।¹⁰ द्विवेदी जी का व्यक्तित्व मूलतः सुधारक और प्रवर्तक का व्यक्तित्व था। इसीलिए द्विवेदी जी की शैली में सम्पूर्ण नवीनता के दर्शन होते हैं, उतनी नवीनता जितनी उनके पीछे आनेवाले रामचन्द्र शुक्ल जैसे प्रशस्त लेखकों में नहीं दिखलाई देती नव-निर्माण का कार्य हाथ में लेकर उन्होंने भाषा और व्याकरण की नींव मजबूत की। इस कार्य क उन्होंने स्वतः किया।¹¹

हिन्दी के मानकीकरण हिन्दी साहित्य एवं हिन्दी भाषा के विकास में 'सरस्वती' की विशिष्ट भूमिका रही है। वे लेखों का संपादन व उसकी कायापलट कर भाषा को सरल, सुबोध और अभिव्यक्तिपूर्ण बना देते थे।¹²

'सरस्वती' का प्रकाशन खड़ी बोली कविता के उद्भव काल में हुआ यह युग ब्रजभाषा की कविता के पराभव का था। 'सरस्वती' ने खड़ी बोली की कविता के विकास में योगदान किया द्विवेदी जी ने मुख्य रूप से जीवन पर आधारित यथार्थवादी भावों से युक्त कविताओं का प्रकाशन किया। हिन्दी के महाकवियों, मैथिलीशरण गुप्त, निराला, महादेवी वर्मा आदि की कविताएं सरस्वती में प्रकाशित हुईं।¹³

श्री लक्ष्मी शंकर व्यास के अनुसार 'सरस्वती' का सम्पादन करने पर आचार्य द्विवेदी ने अपने लिए कुछ आदर्श निश्चित किए।

आप ने संकल्प किया—

1. वक्त की पाबन्दी करूंगा। 2. मालिकों का विश्वास—पात्र बनने की चेष्टा करूंगा। 3. अपने हानि—लाभ की परवाह न कर पाठकों के हानि—लाभ का सदा ध्यान रखूंगा। 4. न्याय पथ से कभी विचलित न हूँगा। पत्र संचालकों ने आचार्य द्विवेदी के इन्ही आदर्शों से प्रभावित होकर उनके संपादन स्वतन्त्रता में कभी बाधा नहीं डाली।

डॉ० रामविलास शर्मा लिखते हैं कि "सरस्वती की लोकप्रियता का एक कारण हिन्दी नवजागरण की अपनी शक्ति थी। यह शक्ति बिखरी हुई थी। द्विवेदी जी की युगान्तरकारी भूमिका यह थी कि उन्होंने बिखरी हुई शक्ति को एक पत्रिका के माध्यम से एकताबद्ध किया।"¹⁴

'सरस्वती' की सम्पादन कला इतनी उत्कृष्ट होती थी कि उसके बारे में संपादन कला के विख्यात सम्पादक आचार्य बाबूराव विष्णु पराडकर ने लिखा था—

मेरे लिए आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी का महत्व उनके संपादन कौशल में है। ऐसी विशेषता मैंने अन्य किसी मासिक में अभी तक नहीं देखी थी। उसका प्रत्येक अंक सम्पादक के व्यक्तित्व की घोषणा करता था।

दुर्भाग्यवश स्वातन्त्र्योत्तर युग में हिन्दी पत्रकारिता के व्यवसाय प्रधान हो जाने के कारण सरस्वती जैसी प्रगतिशील विचार धारा वाली पत्रिका का लोप हो गया। सन् 1970 में इसका प्रकाशन हमेशा के लिए बन्द हो गया। यह हिन्दी भाषा, साहित्य एवं पत्रकारिता के लिए दुःखद घड़ी है।¹⁵

I UnHkz %

1. पाठक. राममोहन, साहित्यिक पत्रकारिता, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी, संस्करण 1998, पृ० 3, 4, 5।
2. जोशी. ज्योतिष, साहित्यिक पत्रकारिता, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ० 107

3. पुनर्नवा, अक्टुबर, 2008, पृ0 66
4. जैन. रमेश कुमार, हिन्दी पत्रकारिता का आलोचनात्मक इतिहास, पृ0 45
5. पाठक. राममोहन, साहित्यिक पत्रकारिता, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी, संस्करण 1998, पृ0 23, 24, 25।
6. सिंह. डॉ0 धीरेन्द्रनाथ, हिन्दी पत्रकारिता, भारतेन्दु पूर्व से छायावादोत्तर काल तक विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, पृ0 32
7. वही, पृ0 33
8. वाजपेयी. अम्बिका प्रसाद, समाचार पत्रों का इतिहास, ज्ञानमण्डल, वाराणसी, पृ0 141
9. मिश्र. कृष्ण बिहारी, हिन्दी पत्रकारिता : जातीय चेतना और खड़ी बोली साहित्य की निर्माण भूमि, भारतीय ज्ञानपीठ, संस्करण 2004, पृ0 241
10. शर्मा. रामविलास, महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण, राजकमल प्रकाशन, 1977, पृ0 360
11. मिश्र, कृष्ण बिहारी, हिन्दी पत्रकारिता जातीय चेतना और खड़ी बोली साहित्य का निर्माण भूमि, भारतीय ज्ञानपीठ संस्करण, 2004, पृ0 241
12. भानावत संजीव, पत्रकारिता का इतिहास एवं जनसंचार माध्यम, युनिवर्सिटी पब्लिकेशन जयपुर संस्करण 2000, पृ0 77-78
13. सिंह. डॉ0 धीरेन्द्रनाथ, हिन्दी पत्रकारिता, भारतेन्दु पूर्व से छायावादोत्तर काल तक विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, पृ0 63, 64, 65
14. भानावत. संजीव, पत्रकारिता का इतिहास एवं जनसंचार माध्यम, युनिवर्सिटी पब्लिकेशन, जयपुर, संस्करण-2000, पृ0 79
15. भारती. जयप्रकाश, संपादक-हिन्दी पत्रकारिता दशा और दिशा, संस्करण-1994, पृ0 58-59

हकी. Myhdj .k ds nkj ea jkt Hkk"kk fglnh dh vo/kkj .kk , oa fLFkfr

MkK I qkhy dckj jk; *

शीतयुद्ध की समाप्ति के बाद आधुनिक लोकतंत्रात्मक व्यवस्था का उदय हुआ। इसने उदारवादी व्यवस्था को विकसित करने का कार्य किया। वैश्विक व्यवस्था में उदारवाद, भूमण्डलीकरण, मुक्तव्यापार और विविध अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं का प्रादुर्भाव हुआ। भूमण्डलीकरण के दौर में राजभाषा, राष्ट्रभाषा जैसी अवधारणायें अब चिंतन और व्यवहार का विषय नहीं रही, जिनके कारण दुनियाँ की अनेक भाषाओं का अस्तित्व पूर्णतः समाप्त तो नहीं हुआ है, परन्तु समय-समय पर भाषा और क्षेत्रीय अस्मिता के प्रश्नों ने गम्भीरता से इस पर विमर्श के लिए उत्प्रेरित करने का कार्य किया।

भूमण्डलीकरण के दौर में राजभाषा और राष्ट्रभाषा की अवधारणा के स्थान पर अब ग्लोबल भाषा की बात की जा रही है। "भूमण्डलीकरण मूलतः सांस्कृतिक प्रक्रिया न होकर आर्थिक प्रक्रिया है जो मुख्य व्यापार के सिद्धान्त पर टिकी है। स्वाभाविक है कि जिस भाषा के बोलने वाले लोग एक बड़ा बाजार बनाते हैं उसका अस्तित्व इस प्रक्रिया में और मजबूत होता है। पूंजीवादी दौर में विज्ञापनों का महत्व बढ़ता जा रहा है क्योंकि वही उपभोक्ता के अवचेतन में प्रविष्ट होकर ब्रांड का प्रभाव उत्पन्न करते हैं। ध्यातव्य यह है कि यह प्रक्रिया विदेशी भाषा में असंभव है।"¹

"भूमण्डलीकरण सांस्कृतिक आक्रमण का एक हथियार है। अपना माल बेचने के लिए विदेशी प्रतिष्ठान सबसे पहले उस सोच का निर्माण करना चाहते हैं जिससे वैसी जरूरत पैदा होने लगे जिनकी पूर्ति वे करना चाहते हैं। किसी समाज की सोच बदलने का तरीका है उसकी भाषा को बदल देना। इस दृष्टि से राजभाषा की अवधारणा हमें सांस्कृतिक साम्राज्यवाद से बनाती है और हमारे वैचारिक अस्तित्व को बनाए रखती है।"² राजभाषा की अवधारणा की प्रासंगिकता का एक कारण यह भी है कि भारत के अप्रवासी विदेशों में बहुत बड़ी संख्या में रहते हैं और उनके सामाजिक संबंध बहुत धनिष्ठ हैं। ये संबंध उन देशों की भाषा में नहीं बनाए जा सकते जहाँ वे रहते हैं।

"राजभाषा नामक पद राजकीय कार्य की भाषा के रूप में प्रतिष्ठित रहा है। राजभाषा और राष्ट्रभाषा के अस्तित्व में एक तान्त्रिक अन्तर है। कोई भी राष्ट्र भाषा उस राष्ट्र की राजभाषा तो बन सकती है, परन्तु किसी देश की राजभाषा अपने समय में उस देश की राष्ट्रभाषा होने की प्रतिबद्धता नहीं पाल सकती। वास्तव में जब कोई राष्ट्र अधीन होता है तब राष्ट्रभाषा कुछ और होती है और राजभाषा कुछ और, किन्तु स्वाधीन राष्ट्र की राजभाषा और राष्ट्रभाषा एक हो सकती है।"³

लोकतान्त्रिक व्यवस्था के अन्तर्गत किसी देश का राजकाज या प्रशासन चलाने के लिए राजभाषा के रूप में किसी महत्वपूर्ण भाषा को मान्यता दी जाती है। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि प्रत्येक राष्ट्र अपने संविधान निर्माण के समय प्रशासनिक कार्यों को चलाने के लिए किसी एक भाषा को राजकीय स्वीकृति प्रदान करता है। केन्द्रीय और प्रादेशिक सरकार द्वारा सरकारी कामकाज एवं पत्र-व्यवहार राजभाषा के माध्यम से सम्पन्न होता है।

"भारतीय संविधान के भाग 5,6,17 में राजभाषा संबंधी चार अध्याय हैं जो क्रमशः संघ की भाषा, प्रादेशिक भाषाओं, उच्चतम न्यायालय एवं उच्च न्यायालयों आदि की भाषा तथा विशेष निर्देशों से संबंधित है। ये चारों अध्याय अनुच्छेद 343 से 351 के अंतर्गत समाहित हैं। इसके अतिरिक्त अनुच्छेद 120 तथा 210 में संसद एवं विधान मण्डलों की भाषा के संबंध में विवरण दिया गया है।"⁴

*असिस्टेन्ट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, सेण्ट ऐण्ड्रयूज कॉलेज, गोरखपुर, उ0प्र0

संविधान के अनुच्छेद 120 (1) में कहा गया है कि "संसद में कार्य हिन्दी या अंग्रेजी में किया जायेगा।" इसी प्रकार अनुच्छेद 120 (2) में उपबन्ध है कि "जब तक संसद विधि द्वारा कोई उपबन्ध न करें, तब तक संविधान के आरम्भ से पंद्रह वर्ष की अवधि समाप्त होने के पश्चात् या अंग्रेजी वाला अंश नहीं रहेगा।" संविधान के अनुच्छेद 210 में कहा गया है – "राज्य के विधान मंडल में कार्य राज्य की राजभाषा या राजभाषाओं में या हिन्दी में या अंग्रेजी में किया जाएगा।" संविधान के अनुच्छेद 343 में कहा गया है "संघ की राजभाषा हिन्दी और लिपि देवनागरी होगी।" संविधान के अनुच्छेद 344 के अंतर्गत व्यवस्था की गई है कि "संविधान के आरम्भ के पाँच वर्ष बाद राष्ट्रपति एक आयोग गठित करेगा जो हिन्दी के प्रयोग के विस्तार पर सुझाव देगा।" अनुच्छेद 345 के अनुसार "किसी राज्य का विधान मण्डल विधि द्वारा उस राज्य में प्रयुक्त होने वाली किसी भाषा या हिन्दी को राजकीय प्रयोजनों के लिए स्वीकार कर सकेगा।" अनुच्छेद 346 के अनुसार "संघ द्वारा निर्मित भाषा दो राज्यों के बीच या संघ और किसी राज्य के बीच पत्र व्यवहार की भाषा होगी।" अनुच्छेद 347 के अनुसार "यदि किसी राज्य की जनसंख्या का पर्याप्त भाग यह चाहता हो कि उसके द्वारा बोली जानेवाली भाषा को राजभाषा की मान्यता दे तो राष्ट्रपति यह निर्देश दे सकेगा कि ऐसी भाषा को उस राज्य में शासकीय मान्यता दी जाए।" अनुच्छेद 348 के अनुसार "जब तक संसद विधि द्वारा कोई उपबंध न करे, तब तक उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों की सभी कार्यवाहियाँ अंग्रेजी में होंगी। अनुच्छेद 349 के अनुसार "संसद यदि राजभाषा से संबंधित कोई विधेयक या संशोधन प्रस्तावित करना चाहे तो राष्ट्रपति की पूर्व स्वीकृति आवश्यक है और राष्ट्रपति उस पर अपनी मंजूरी दे या नहीं।" अनुच्छेद 350 के अन्तर्गत "राष्ट्रपति उन लोगों पर विशेष ध्यान देगा जो भाषायी आधार पर अल्पसंख्यक हैं। अनुच्छेद 351 के अनुसार "संघ का यह कर्तव्य होगा कि वह हिन्दी भाषा का प्रसार बढ़ाए तथा उसका विकास करे ताकि वह भारत की सामासिक संस्कृति के सभी तत्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम बन सके।"⁶

राष्ट्रपति ने इसी क्रम में 1955 में यह आदेश निर्गत किया कि, "जहाँ तक संभव हो जनता के साथ पत्र-व्यवहार में तथा प्रशासनिक कार्यों में हिन्दी के प्रयोग को अंग्रेजी के साथ बढ़ाया जाय तथा अंग्रेजी का ही पाठ प्रामाणिक माना माना जाय। राजभाषा आयोग 1955 के अनुसार – "14 वर्ष की आयु के सभी बच्चों को हिन्दी का ज्ञान करा दिया जाय। प्रतियोगी परीक्षाओं में हिन्दी का एक अनिवार्य प्रश्न पत्र रखा जाय। हिन्दी के विकास का दायित्व एक प्रशासनिक इकाई पर होना चाहिए। उच्च न्यायालयों में क्षेत्रीय भाषा के प्रयोग को बढ़ाना चाहिए।"⁷

राजभाषा अधिनियम 1963 तथा 1976 में फिर से अंग्रेजी के वर्चस्व को बढ़ावा दिया गया और हिन्दी पृष्ठभूमि में ही रही। ध्यान देने योग्य बात यह है कि सरकार के तीन मंत्रालय राजभाषा संबंधी कार्यों में संलग्न हैं – गृह मंत्रालय, विधि मंत्रालय तथा शिक्षा मंत्रालय, फिर भी हिन्दी की अपेक्षित प्रगति नहीं हो पा रही है। "गृह मंत्रालय का राजभाषा विभाग यह रिपोर्ट तैयार करता है कि कितने प्रतिशत कर्मचारी हिन्दी में काम करते हैं? स्वैच्छिक संस्थाओं को हिन्दी के विकास में क्या योगदान रहा? कितनी भाषाओं का हिन्दी से अनुवाद हुआ? सरकारी संस्थाओं में हिन्दी का प्रयोग कितना बढ़ा है? आदि। विधि मंत्रालय भी विधायी कार्यों में हिन्दी की प्रगति का विश्लेषण करता है। शिक्षा मंत्रालय और इसके अंतर्गत आने वाला केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय मुख्य रूप से शिक्षा में राजभाषा हिन्दी की संभावनाओं को तलाशने और तराशने में जुटा है। उच्च शिक्षा में प्रयुक्त होने वाली पुस्तकों का अनुवाद, प्रकाशन एवं वितरण, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली के निर्माण आदि कार्य भी करता है।"⁸

अनेक संवैधानिक प्राविधानों के बावजूद तथा संविधान लागू होने के लगभग 64 वर्षों के बाद भी हिन्दी भाषा की वह स्थिति नहीं बन सकी है जो चीनी भाषा की है। आज भी विश्व में दो सौ करोड़ से अधिक लोग हिन्दी जानने समझने वाले हैं फिर भी यह संयुक्त राष्ट्र संघ की आधिकारिक भाषा नहीं बन पाई है। ऐसा लगता है कि प्रत्येक वर्ष 14 सितम्बर को केन्द्र सरकार हिन्दी दिवस तो मनाती है लेकिन केन्द्रीय संस्थानों और कार्यालयों में ही हिन्दी उपेक्षित है।

भाषिक संक्रमण की यह स्थिति ऐसा नहीं है कि केवल भारत में पैदा हुई हो। दुनिया के कई देशों में लगभग ऐसी स्थिति बनी हुई थी। अंतर सिर्फ यह है कि दृढ़ इच्छाशक्ति की वजह से वे देश भाषिक द्वैत को समाप्त कर सके, परन्तु हम अपनी राजनीतिक एवं प्रशासनिक कमजोरियों की वजह से ऐसा नहीं कर सके। "1855 ई0 में जब जर्मनी स्वतंत्र हुआ तो विस्मार्क के आदेश पर जर्मनी भाषा एक

वर्ष के भीतर राजभाषा बन सकी। 1917 में जब रूसी क्रांति हुई तो वहां भी जर्मन भाषा की जगह रूसी भाषा को राजभाषा का दर्जा दिया गया। इजरायल की हिब्रू भाषा जो दो हजार साल से प्रयोग में नहीं थी इजरायल की राजभाषा बनी। यही नहीं 1947 ई0 में हमसे अलग हुए राष्ट्र पाकिस्तान की राजभाषा भी उर्दू बनी। स्वतंत्रता के बाद बांग्लादेश ने भी अपनी ही भाषा को राजभाषा का दर्जा दिया।⁹

हिन्दी के राजभाषा न बन पाने के जो कारण गिनाए जाते हैं, उनमें दो प्रमुख हैं – पहला भारत एक बहुभाषिक देश है तो किसी एक भाषा को सर्वोच्च कैसे माना जाय? दूसरा – अंग्रेजी की अपेक्षा हिन्दी पिछड़ी हुई भाषा है। पर सच तो यह है कि कोई भी देश कितना भी बहुभाषिक क्यों न हो उसे राजकाज चलाने के लिए एक भाषा का चयन तो करना ही पड़ता है। एक लोकतांत्रिक देश में चयन का आधार लोकतांत्रिक होना चाहिए। इस दृष्टि से हिन्दी का चयन उचित होगा। भाषा के नाम पर जो विरोध की मानसिकता बनायी जा रही है वह आम आदमी से कम, राजनीतिक अभिजात्यवर्ग से अधिक संबंधित है।

दूसरा तर्क हिन्दी को पिछड़ी भाषा मानना है। किसी भी भाषा को उन्नत होने की परीक्षा दो आधारों पर की जा सकती है। पहला भाषा के नियम कितने वैज्ञानिक हैं तथा दूसरा भाषा जीवन के कितने व्यापक क्षेत्र को समेटती है। ध्वनि-व्यवस्था से लेकर लिपि-व्यवस्था तक हिन्दी की वैज्ञानिकता में कोई संदेह नहीं है। जहाँ तक व्यापकता का सवाल है तो अंग्रेजी को प्रायोजित तरीके से पश्चिमी देशों द्वारा व्यापक बनाया गया है। वहीं ऐसा प्रयास हिन्दी के साथ नहीं किया जा रहा है।

अंग्रेजी के व्यापक होने का प्रमुख कारण यह है कि वह उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद के दौर से जुड़ी है जिसने दुनिया पर अधिकार किया और ज्ञान विज्ञान का विकास किया। एक तो हमने ज्ञान विज्ञान में उतनी उन्नति नहीं की, दूसरे हमारा देश भी उपनिवेश रहा। इसका एकमात्र उपाय है कि हिन्दी के प्रयोग को अधिकाधिक बढ़ाया जाए। आज सरकार की अपेक्षा इस कार्य का निर्वहन भारतीय फिल्म उद्योग बखूबी कर रहा है। आज की दुनिया के वैज्ञानिक और तकनीकी विकास को व्यक्त करने के लिए जो शब्द हिन्दी में नहीं हैं उनका हिन्दी में प्रकृति के अनुकूल अनुवाद भी किया जा सकता है। आज भी अनुवाद और नये शब्दों के निर्माण का कार्य तीव्र गति से चल रहा है किन्तु, प्रचलन में नहीं आने के कारण वे शब्द भाषा को और दुरुह बनाते जा रहे हैं।

दरअसल, मूल समस्या सिर्फ राजनीतिक इच्छाशक्ति की कमी के कारण है। हमें ध्यान रखना चाहिए कि, यह अंग्रेजी और हिन्दी की नहीं, अभिजात्य और सामान्य वर्ग की लड़ाई है। लोकतंत्र में निर्णय राजनेताओं के हितों से नहीं बल्कि जनता के हितों से तय होते हैं।

उपर्युक्त तथ्यों एवं तर्कों के आधार पर राजभाषा हिन्दी के वर्तमान और भविष्य पर डॉ० हरदेव बाहरी की यह टिप्पणी प्रासंगिक लगती है, "संविधान ने अंग्रेजी की सहचरी बनाया और इस समय सरकार ने उसको इसी विदेशी भाषा की चेरी बना रखा है। जनतांत्रिक शासन व्यवस्था में जनता की भाषा ही राजभाषा होगी, इसमें कोई सन्देह नहीं है, परन्तु हमें अंग्रेजी को हटाना होगा। इसके रहते हिन्दी ही नहीं, हमारी कोई भी प्रादेशिक भाषा पनप नहीं सकती।"¹⁰

I UnHkz %

1. हिन्दी-कुछ नई चुनौतियाँ, लेखक डॉ० कैलाशनाथ पाण्डेय, राजकमल प्रकाशन पृ० 79
2. हिन्दी भाषा-पहचान से प्रतिष्ठा तक, लेखक हनुमान प्रसाद शुक्ल, राजकमल प्रकाशन पृ० 192
3. हिन्दी साहित्य का इतिहास, सं० डॉ० नगेन्द्र, मयूर प्रकाशन, संस्करण 2012, पृ० 14
4. हिन्दी भाषा, लेखक डॉ० हरदेव बाहरी, अभिव्यक्ति प्रकाशन, संस्करण 1992, पृ० 139
5. वही, पृ० 141, 42
6. वही, पृ० 143
7. वही, पृ० 144
8. हिन्दी भाषा, लेखक डॉ० कैलाश चन्द भाटिया, साहित्य भवन प्रकाशन, संस्करण 1995, पृ० 172, 73
9. सरकारी कार्यालयों में हिन्दी का प्रयोग, लेखक गोपीनाथ श्रीवास्तव, राजकमल प्रकाशन, पृ० 210
10. हिन्दी भाषा, लेखक डॉ० हरदेव बाहरी, अभिव्यक्ति प्रकाशन, संस्करण, 1992, पृ० 145

नगरीकरण किसी भी समाज में विकास की एक लम्बी प्रक्रिया का परिणाम होता है ईसा-पूर्व लगभग पाँचवीं सदी में मध्य गंगा के मैदान में नगरों के प्रकट होने के साथ ही भारत में द्वितीय नगरीकरण की शुरुआत हुई। इस काल के प्रमुख नगरों में कौशाम्बी, श्रावस्ती, अयोध्या, कपिलवस्तु, वाराणसी, वैशाली, राजगीर, पाटलिपुत्र और चंपा का उल्लेख किया जा सकता है।

बुद्धकालीन समाज में अनेक नगर शासन के मुख्यालय थे। इस नगरों पर शिल्पी एवं वणिज आकर बसते गए। कुछ परवर्ती ग्रन्थों¹ से ज्ञात होता है कि नगर में अन्य व्यवसायों के अतिरिक्त कृषक भी निवास करते थे। ऐसा प्रतीत होता था कि कृषकों का सम्बन्ध गाँवों से ही था। चूँकि कृषि के विकास ने अन्य आर्थिक गतिविधियों को बढ़ावा दिया। इसलिए समाज में अनेक सामाजिक-आर्थिक समूहों का भी उदय हुआ। बौद्ध साहित्य² में बार-बार गृहपति (समृद्ध किसान) का उल्लेख होना तथा इनके कार्य में कृषि के साथ व्यापार को शामिल करना। इस बात का संकेत है कि व्यापार तथा वाणिज्य क्रिया महत्वपूर्ण हो रही थी और इससे सम्बन्धित एक अलग सामाजिक समूह का निर्माण हो रहा था। सम्पत्ति के व्यक्तिगत स्वामित्व के कारण तथा ब्राह्मणों का कम प्रभाव के कारण समूह कृषकों ने अपनी सम्पत्ति का उपयोग व्यापार में किया। फलतः भू-स्वामी और व्यापारी के रूप में दो शाखाएँ हो गयी जिसके परिणामस्वरूप श्रेष्ठि की अवधारणा विकसित हुई। ये सारी परिस्थितियाँ नगरीकरण के विकास में सहायक रही होगी।

बुद्धकालीन समाज में वैदिक वर्ण व्यवस्था और भी जटिल दिखायी पड़ती है। भौतिक समृद्धि के स्थान पर जाति का विस्तार होने लगा। वर्ण और जाति का निर्णय कर्मणा के स्थान पर जन्मना हो गया। साहित्यिक साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि इस काल का भारतीय समाज ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र के रूप में पूर्णतया विभाजित था।³ ब्राह्मण एवं क्षत्रियों का स्थान सुविधाभोगी के रूप में स्थापित हुआ और वैश्य एवं शूद्र का स्थान निम्न स्तरीय हो गया।⁴ 'I = I kfgR; में हमें ब्राह्मण की श्रेष्ठता और विशिष्टता का प्रमाण मिलता है।⁴ समाज में श्रेष्ठता स्थापित करने के लिए ब्राह्मणों एवं क्षत्रियों के मध्य लम्बा संघर्ष हुआ।⁵ इस काल में सामाजिक विभेदीकरण बहुत तीव्र हो गया था। प्रत्येक वर्ग के ब्रह्मचारियों के लिए अलग-अलग प्रकार के वस्त्रों तथा विभिन्न वर्ण के व्यक्तियों द्वारा गृहों के निर्माण हेतु भूमि का रंग भी भिन्न-भिन्न निर्धारित किया गया।⁶ प्रारम्भिक प्रक्रिया से स्पष्ट होता है कि बुद्ध ने ब्राह्मणों की जगह वर्ण क्रम में प्रथम स्थान क्षत्रियों को तथा जन्म की जगह कर्म को अधिक महत्व दिया। ऐसा लगता है कि बुद्धकालीन समाज में ब्राह्मणों की अपेक्षा क्षत्रियों को विशेष महत्व दिया जा रहा था।

भगवान बुद्ध ने क्षत्रिय जाति को गणसंघों से सम्बद्ध किया एवं वैशाली और कपिलवस्तु जैसे गणसंघों के शासक वर्ग का पूर्वज बताया। बौद्ध साहित्य में शाक्य, लिच्छवी और मल्ल इत्यादि को क्षत्रिय राजवंशों से जोड़ा गया। इन संघों को दो वर्गों उच्च और निम्न में बाँटा गया था। इस विभाजन का आधार आर्थिक था।⁷ इस प्रकार यह अनुमान लगाया जा सकता है कि तत्कालीन समाज में क्षत्रिय सैनिक कार्य के अतिरिक्त कुछ अन्य प्रकार के कार्य यथा- व्यापार, वाणिज्य भी करते रहे होंगे। किसी एक स्थान को केन्द्र मानकर वस्तुओं का आदान-प्रदान किया जाता था जो कालान्तर में नगर के रूप में परिणत हो गये। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि क्षत्रिय वर्ग नगरों के विकास में सहयोग कर रहा था तो ब्राह्मण वर्ग

* प्रवक्ता, प्राचीन इतिहास, बसन्त महाविद्यालय, तेन्दुई, सरायइनायत, इलाहाबाद, 2010

नगरों के विकास में असहयोग कर रहा था। ब्रह्मचारी के नगर में जाने से रोका गया। शूद्र पर धन कमाना, समुद्री यात्राओं, मनुष्य, तरल पदार्थों, सुगन्धित कपड़े, चमड़े, अनाज इत्यादि का व्यापार करना भी ब्राह्मण साहित्य में अत्यधिक हेय माना जाता था।⁸ तत्कालीन समाज में प्रचलित श्रमण परम्परा का नगरीकरण के विकास में विशेष योगदान प्रतीत होता है। श्रमण-संस्कृति का विशेष रूप से बौद्ध तथा जैन धर्म के व्यापारी समुदाय व निम्न वर्ग में द्रुत गति से प्रचार हुआ। अतः वह समुदाय जो व्यापारिक क्रियाकलाप तथा शूद्र का धन प्राप्त करना चाहता था, जैन धर्म में दीक्षित हो गया। क्योंकि उनके द्वारा किये जा रहे आर्थिक प्रयत्नों को धार्मिकता तथा नैतिकता दोनों का आधार मिला। इसके परिणामस्वरूप व्यक्ति अपना कार्य कुशलतापूर्वक करने लगे।

बुद्ध द्वारा प्रतिपादित धार्मिक आन्दोलन को भी नगरीकरण की प्रक्रिया के सहायक के रूप में देखा जा सकता है। छठी शताब्दी ई0पू0 में आविर्भूत आन्दोलन के पीछे सामाजिक एवं आर्थिक मूल्यों में व्यापक परिवर्तन के दृष्टिकोण को देखा जा सकता है। पूर्वी गंगा घाटी में नवीन सामाजिक मूल्यों के परिणामस्वरूप अभ्युदित विशिष्ट भौतिक संरचना में वैदिक आर्यों की धार्मिक मान्यताएँ अप्रासंगिक हो रही थी। इस काल में कर्मकाण्ड परक अनुष्ठानों और पशुबलि का विरोध कर ब्रह्मविद्या, अध्यात्मविद्या, आवागमन एवं मोक्ष पर अधिक बल दिया गया। वैदिक धर्म के विरोध में पृथक सम्प्रदायों की स्थापना अनेक कार्यो द्वारा इसी काल में की गयी। इनमें प्रमुख काश्यप मक्खलि पुत्र गोशाल, अजित केशकम्बलिन, संजय बेलदिठपुत्त, पकुध कच्चायन तथा निगण्ठनाथपुत्त विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन सभी दार्शनिक चिन्तकों ने पुरोहितवाद के विरोध में उपनिषदकारों द्वारा छोड़े गये नवजागरण के ऐतिहासिक आन्दोलन को आगे बढ़ाया तथा सामाजिक एवं आर्थिक विकास की धारा को तीव्र किया। इस युग में जहाँ महात्मा बुद्ध जैसे महान आन्दोलनकारी का जन्म हुआ, वहीं चार्वाक जैसे स्पष्टवादी दार्शनिक भी हुए जिन्होंने बौद्धिक प्रतिक्रियावाद पर प्रत्यक्ष प्रहार करते हुए पाखण्ड वृत्ति को निर्मूल सिद्ध करने का साहस किया। बुद्ध ने जहाँ जातिवादी का विरोध कर समतावादी समाज के स्थापना की प्रेरणा दी, वहीं उन आर्थिक संरचनाओं का भी संरक्षण दिया जो वाणिज्य-व्यापार के विकास और नगरीकरण की प्रक्रिया में सहायक थी। बुद्ध ने हस्तशिल्प, व्यापार, वाणिज्य, कर्ज व उस पर लगने वाले सूद इत्यादि क्रियाओं का समर्थन किया।⁹ बौद्ध शिक्षाओं में आदर्श व्यापारी के व्यावहारिक प्रतिमान को भिक्षु के लिए आदर्श के रूप में प्रस्तुत किया गया तथा भिक्षुओं को उन गुणों के अनुकरण का सुझाव दिया गया है, जिनसे वे अपने जीवन में सफल हो सकें।¹⁰ पालि ग्रन्थों में ऋण ब्याज पर धन कमाने को भी हेय नहीं समझा गया। बल्कि दीर्घ निकाय में ऋण लेने से होने वाले लाभ की चर्चा करते हुए कहा गया है कि ऋण की सहायता से एक व्यक्ति अपने व्यापार को आगे बढ़ा सकता है¹¹ तथा अपने परिवार हेतु कुछ बचा भी सकता है। परन्तु बौद्ध संघों में ऋणी व्यक्ति के प्रवेश निषेध सम्बन्धी नियम तथा ऋणों को लौटाने की आवश्यकता सम्बन्धी अनेक सन्दर्भ हमें बुद्ध की शिक्षाओं की व्यावहारिकता और उस सामाजिक आवश्यकता का बोध कराती है जिनका ब्राह्मण परम्परा में अभाव दिखाई पड़ता है। यहाँ तक की नगरों से सम्बद्ध वेश्यावृत्ति को भी बुद्ध ने अवहेलना नहीं किया।¹² इससे स्पष्ट होता है कि इन नवीन मान्यताओं का बुद्ध द्वारा समर्थन तत्कालीन सामाजिक आवश्यकता के अनुरूप था और निश्चय ही इससे आर्थिक विकास की गति तथा नगरीकरण की प्रक्रिया दोनों में बढ़ोत्तरी हुई होगी।

छठी शताब्दी ई0पू0 के गंगा घाटी के भौतिक समृद्धि के धरातल पर द्वितीय नगरीकरण के जिस दौर की शुरुआत हुई उसमें खनिज की उपलब्धता एक महत्वपूर्ण प्रश्न है। चूँकि मध्य गंगा घाटी में आर्यों की आबादी फैलने के साथ ही साथ लोगों को लोहे के सम्बन्ध में अधिकाधिक जानकारी प्राप्त होती गयी। लौह तत्व की उपलब्धता ने जंगलों की कटाई करके कृषि योग्य भूमि का निर्माण किया गया। इस युग में कृषि उपकरणों में व्यापक स्तर पर लोहे का उपयोग देखने को मिलता है। लोहे की अनेक वस्तुएँ कौशाम्बी, प्रह्लादपुर, बनारस तथा चिरौंद, वैशाली, पटना, सोनपुर और चम्पा में मिली है। साहित्यिक साक्ष्यों से भी इस युग में लोहे के उपयोग की जानकारी प्राप्त होती है। इस काल के अनेक ग्रन्थों से

हमें भट्टी के प्रयोग का स्पष्ट उल्लेख मिलता है।¹³ इसके प्रयोग ने उपकरणों एवं हथियारों के उत्पादन की गति प्रदान की जिससे उत्तर प्रदेश एवं बिहार के जंगलों की सफाई एवं कृषि योग्य भूमि के निर्माण की प्रक्रिया में तेजी आई। एक प्रश्न उठता है कि क्या लौह तत्व ही द्वितीय नगरीकरण की क्रान्ति का नियामक है? लौह तत्व की व्यापक उपलब्धता ने इस भौतिक प्रगति को निश्चित गति प्रदान की। किन्तु यदि यह खनिज उपलब्ध न हो पाता तो नगरीकरण की प्रक्रिया अवरूद्ध हो जाती, ऐसा नहीं कहा जा सकता। क्योंकि प्रथम नगरीकरण के दौर में सैन्धव निवासी लौह धातु से पूर्णतः अनभिज्ञ होकर भी नगरीय वैभव की सर्वोच्च सोपान को प्राप्त कर चुके थे। ऐसी स्थिति में लौह तत्व की आश्रयता पर ही छठी शताब्दी ई0पू0 के भौतिक मूल्यों का देखना उचित नहीं होगा। द्वितीय नगरीकरण के वैभव का सूत्रपात ऋग्वैदिक सभ्यता के अन्तिम चरण में ही हो गया था। जब परम्पुरुष द्वारा चातुर्वर्ण व्यवस्था के सृजन के साथ सामाजिक समझौते के द्वारा कार्य का विभाजन करके आर्य पूर्व की ओर विकास की तलाश में प्रयाण किये। आर्य जिस सामाजिक एकता के साथ प्रगति की दौड़ के लिए आगे बढ़े थे, ऐसे सकारात्मक सोच के साथ उन्हें नगरीकरण के उच्च सोपान को प्राप्त करना ही था, भले ही 600 ई0पू0 के बजाए 400 ई0पू0 या उसके बाद प्राप्त करते। लौह तत्व की उपादेयता यही रही कि उसने इनके प्रगति के मार्ग को प्रशस्त करते हुए गति तीव्रतर कर दी, किन्तु आर्य लोहे से परिचित न भी होते तो सामाजिक एकता के फौलादी हाथों से गंगा घाटी की उर्वर धरती में नगरीय सभ्यता के फूल खिलाने में अवश्य सफल होते।

I UnHkz %

1. अग्नि पुराण, प्रथम खण्ड, 1986 झा तारणीश (अनु0) हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, इलाहाबाद, 11-24
2. थापर आर, 1997. 86
3. बौधायन धर्मसूत्र (द्वितीय संस्करण) पाण्डेय, उमेश चन्द्र (अनु0) काशी संस्कृत ग्रन्थमाला, 104, चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी 01.08.16.1, श्री आपवस्तम्ब-धर्मसूत्र 1969 (द्वितीय संस्करण) पाण्डेय उमेशचन्द्र (अनु0) काशी संस्कृत ग्रन्थ माला, 172 चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी 1.1.1.4 : गोपाल आर0 1959 इण्डिया ऑफ वैदिक कल्पसूत्राज ने नेशनल पब्लिशिंग हाउस 114
4. श्री गौतम धर्म, सूत्राणि 1993, पाण्डेय उमेशचन्द्र (अनु0) काशी संस्कृत ग्रन्थ माला 172, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, 1.8.13
5. शर्मा, आर0एस0 1996, प्राचीन भारत में भौतिक प्रगति एवं सामाजिक संरचनाएँ
6. गोपाल, आर0 1959, महाभारत 1996 (नवम संस्करण) पाण्डेय, आर0एन0 शास्त्री (अनु0) प्रथम-पंचम खण्ड, गोविन्द भवन कार्यालय, गीता प्रेस, गोरखपुर आदि पर्व, 256-260
7. राय चौधरी, एच0सी0 प्राचीन भारत का राजनीतिक इतिहास, किताब महल, इलाहाबाद, 96-99
8. गोपाल आर, 1959
9. द दीर्घ निकाय, 1975 (पुनः मुद्रित) राइज डेविड्स, टी0डब्लू0 एण्ड जेड0 कारपेन्टर
10. अगुन्तर निकाय Vol. 2.40.69
11. दीर्घ निकाय, Vol. 2.69.
12. दीर्घ निकाय, Vol. 16.2-14-16.
13. पाणिनी 8, 2.37 उवासागदसाओ, सम्पा0-ए0एफ0 रुडाल्फ होर्नले, कलकत्ता, 1890, पृ0 108

आद्या प्रसाद सिंह 'प्रदीप' का जन्म सुल्तानपुर जनपद के रानेपुर नामक गाँव में 5 अगस्त उन्नीस सौ पैंतालिस (05-08-1945) को हुआ था। इनकी माता का नाम ईशराजी और पिता का नाम दुर्गाप्रसाद था। यह गाँव आदि गंगा गोमती के उत्तरी तह पर स्थित कादीपुर तहसील मुख्यालय से लगभग 8 कि०मी० उत्तर प्रकृति की गोद में स्थित है। गांव के पूर्व उत्तर में वेहनवाँ ताल अपनी लहरों से गांव का अभिसिंचन करता रहता है। दक्षिण में गाना और वीरम तालाब तथा सघन वृक्षों की हरीतिमा अन्तर मन को अपनी तरफ खींच लिया करती है। पश्चिम में पाण्डे और वसहिया तालाब दोनों प्राकृतिक सौन्दर्य में चार चाँद लगाते रहते हैं। गाँव की आबादी के निकट बाग-बगीचे वनस्थली और परौवा व तलिया तालाब गांव की सुषमा की वृद्धि करते हैं। ऐसे प्राकृतिक परिवेश में पले प्रदीप जी को साहित्यिक ऊर्जा का स्रोत प्राप्त हुआ। वह गांव बहुत पहले से साहित्य और संगीत का एक केन्द्र है। यहां कथा भागवत, रामचरित्र मानस, तथा अनेक साहित्यिक और धार्मिक ग्रन्थों का पाठ और परायण चला करता है। गांव के दक्षिण में एक मन्दिर है जहां हमेशा सन्तों और महात्माओं का आगमन होता रहता है। इस प्रकार यहां का परिवेश धार्मिक और साहित्यिक बना रहता है। रामनयन सिंह 'काका' का जन्म इसी गाँव में हुआ था। जिन्होंने अवध आध्यात्म रामायण, अवधी महाकाव्य तथा अनेक लोक विधा की पुस्तकों का सृजन किया था जिनका प्रकाशन लोकनाथ पुस्तकालय, कलकत्ता से होता था। काका जी कलकत्ता में नौकरी करते थे और गांव से हमेशा सम्बन्ध बनाए रखते थे।

प्रदीप जी के साहित्य पर तीन से अधिक शोध हुए हैं। पहला शोध अवधी के वर्तमान प्रबन्धकाव्य पर दूसरे गद्य साहित्य पर और तीसरा व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर हुआ है। इसके अलावा अनेक शोध ग्रन्थों में पुस्तकों की समीक्षाएं होती रहती हैं।

डॉ० सुशील कुमार पाण्डेय 'साहित्येन्दु' रीडर एवं अध्यक्ष, संस्कृत विभाग ने एक निबन्ध में प्रदीप जी पर लिखा है कि "प्रदीप जी का हृदय विशाल, चिन्तन उदात्त, स्वाध्याय अप्रमाद सम्पन्न, सहयोग निर्विवाद, चरित्र अनुकरणीय एवं साहित्य सर्वथा पठनीय, मानवीय एवं अनुकरणीय है। वे सास्वत साधना विषयक कठोर तपस्वी, मनस्वी, ओजस्वी, क्रान्त द्रष्टा एवं कालजयी रचनाकर हैं। प्रदीप जैसे उच्च मानव हैं वैसे ही सरस्वती के परमात्मीय भक्त।"

प्रदीप जी को देश-विदेश के लगभग पचास से अधिक सम्मान प्राप्त हो चुके हैं। आप बीसों साहित्यिक संस्थाओं के सर्जक संकल्पक एवं संचालक हैं। इनका साक्षात्कार अनेक समाचारपत्रों, पत्रिकाओं तथा स्मारिकाओं में विस्तारपूर्वक छपा है। इनका पहला साक्षात्कार 10 फरवरी 1988 में प्रकाशित हुआ जिसका शीर्षक था 'पुरस्कार रचनाधर्म का मूल्यांकन नहीं कर सकता' साक्षात्कार लेने वाले डॉ० वीरेन्द्र प्रताप सिंह ने लिखा है कि "श्री आद्या प्रसाद सिंह 'प्रदीप' हिन्दी साहित्य के यशस्वी साहित्यकार हैं। इन्होंने साहित्य के लिए एक पूर्ण समर्पित जीवन जिया है। उनकी साधना राष्ट्र की सांस्कृतिक चेतना से सम्पृक्त होकर युग यथार्थ की कठोर भूमि पर नित्य नये आयाम ग्रहण कर रही है। प्रेम गंगा हर हृदय में प्रवाहित कर एक खुशहाल अन्तर्राष्ट्रीय मानव परिवार उनकी रचनाओं का गन्तव्य है। देशवासियों में देश के प्रति कर्तव्य बोध जाग्रत करने वाली उनकी निर्मल युगानुकूल भावना, खड़ी बोली और अवधी में समान रूप से अभिव्यक्त हुई है।"

प्रदीप जी ने कुल लगभग 110 पुस्तकों का सृजन किया है। उनकी कुछ कृतियों की यहाँ सर्जनात्मक समीक्षा करना आवश्यक है। महाराणा प्रताप महाकाव्य में प्रदीप जी ने खड़ी बोली में लिखा है वन्दना छन्द दृष्टव्य है—

नमन तुम्हें है अम्ब शारदे, छन्द सुखद सरसाओं।
माँ काली को नमन करूँ मैं लाकर भाव पिन्हाओ।
नमन करूँ मैं उन वीरों का जो उद्भट बलिदानी।
शीश चढ़ाकर मातृभूमि को रखा देश का पानी।¹

गोसाईं तुलसीदास प्रदीप जी का अवधी महाकाव्य है। इसमें नौ खण्ड हैं। इस महाकाव्य में कुल मिलाकर 1910 छन्द हैं। खण्ड के छन्द अलग-अलग हैं। कवि मनीषी तुलसी ने अवधी भाशा का वरण किया था कथा के लिए रामचरित्र को चुना। उन्होंने शब्दों के अथाह सिन्धु गांव घर के शब्दों को थहाना शुरू किया।

अवधी अवध केरि भाउ कै सुछन्द भरि,
लोक मन रंजन में अंजन लगाइ गै।
राम के चरित्र कै जो विचित्र चित्र धारि-धारि,
दोहा छन्द सोरठा चौपाई बन्द गाइगै।²

कृष्ण चरित्र मानस प्रदीप जी का अगला महाकाव्य है। इसके आरम्भ में कवि ने अपने गांव रानेपुर का चित्र खींचा है। कवि ने वन्दना करते समय अपने गांव गिराव के देवी देवताओं को भली विधि मनाया है। बरदंइत बाबा, पाण्डे बाबा, कारेदेउ बाबा, कराह बाबा, सतई बाबा की वन्दना के बाद गांव का सुरम्य चित्र खींचा है।³

रानेपुर यह गांव सुहावन। परम रम्य सुचि सुखद सुहावन।।
इहाँ प्रकृति साजु नित साजै। अनुपम रूप देखि जग लागै।।
ससक सियार हिरन द्रुत धावै। पानि पियै आतुर चलि आवै।।
करियारी कचूर चहू ओरी। खेसका करइलि लखें न थेरी।
बग्धा जामैं फरै करेरुआ। तोरैं गेद कुलांचै लेरुआ।।
दुद्धी बन आलू अरु केरा। फूलै फरै सदा चहूँ फेरा।।
पनबुड़डी महोख मिलि, बोलैं बोल सुबोल।।
सुक पिक कोकिल कूक में, भरैं, भाव अनमोल।।³

कवि ने इस महाकाव्य में 27 खण्ड की रचना की है। सभी में श्री कृष्ण के कार्यों का वर्णन हुआ है। प्रदीप जी ने अवधी में गुरुदक्षिणा नाम का एक खण्डकाव्य की भी रचना की है। इसमें कुल सात खण्ड हैं। कवि ने प्रकृति के सुघर सलोना चित्रण प्रस्तुत किया है। एकलव्य ने बिना गुरु के ही गांव को डाकुओं से बचा लिया। यदि गुरु के पास वह अध्ययन कर लेता तो वह अद्वितीय निशानेबाज हो जाता, ऐसा लोग कहने लगे। कुछ लोगों ने बन के मध्य आश्रम की चर्चा की जहां पर गुरु द्रोणाचार्य अपने शिष्यों को शिक्षा देते थे। एकलव्य भी वहां जाने को तैयार हुआ। कवि की चित्रण विधा दर्शनीय है—

माई-दादा के गोड़े पड़ धड़के आपन माथ।
अब जंगल मा बढा अगाड़ी छोड़ेस सब कइ साथ।।
झुर-झुर-झुर-झुर बहइ बयरिया सींचइ तन कइ रोम।
महँकि-महँकि सब फूल करा थें जइसे बन मा होम।।
गावइ मंगल गान चिरइया बइठि पेड़ की डारी।
काटि सियार राहि विरमावइ, धूमइ आरी-आरी।।
पेड़ डारि से पुहुप गिरावइ, साजइं भुइं कै आचर।
धीरे-धीरे मलयानिल बाटइ सेवा मा तत्पर।।⁴

कवि ने रावण की पुत्रवधु सुलोचना पर भी एक खण्डकाव्य लिखा है जो अवधी में ही है। सुलोचना खण्ड काव्य को कवि ने सात खण्डों में लिखा है। सुलोचना एक परम सुन्दरी और सात्विक महिला है—

कंचन अस जेकै काया, विजुरी अस ज्योति निराली ।
भाउना भाउ कै वहिका पहिरायेस गुहिके माली ।
कोइल पेड़े से बोलैं तू लइला सुर हे रानी ।
दइदा तनिका भे हमका आपन सुनरउता दानी ।^१

कवि राम—लक्ष्मण के मानव वेश में जगत के नियन्ता का निरूपण करता है—

वहिं सरवर मा साघू रीझैं कबौ लवटि ना आवैं ।
अमरित बून झरै चहूँ ओरी लाभु जियन कै पावैं ।
पाँच तत्व गुन तीनि मिलवैं नगर बसावैं न्यारा ।
जेकेउ जांइ वनिज का ओहरी फेरि नहिं फिरै दुबारा ।^२

इस प्रकार अवधी काव्य के सशक्त हस्ताक्षर डॉ० आद्याप्रसाद सिंह 'प्रदीप' की समूची साहित्य सेवा अविस्मरणीय है। उन्होंने हिन्दी साहित्यकोश में अपरिमित श्रीवृद्धि की है। हिन्दी खासकर अवधी लेखन के क्षेत्र में जहाँ उन्होंने स्वयं दर्जनों कृतियों यथा खण्डकाव्यों, महाकाव्यों, प्रबन्धकाव्यों, निबन्ध, आदि लगभग सभी विधाओं में अनूठी कृतियों की सर्जना की हैं, वहीं उनके निर्देशन में बहुत से नवोदित साहित्यकार भी लाभान्वित होकर साहित्य सर्जना के क्षेत्र में अभूतपूर्व उपलब्धि हासिल कर रहे हैं।

I UnHkz %

1. महाराणा प्रताप महाकाव्य, पृ०—21
2. गोसाईं तुलसीदास महाकाव्य, पृ०—47
3. कृष्णचरित्रमानस महाकाव्य, पृ०—18
4. गुरुदक्षिणा खण्डकाव्य, पृ०—37
5. सुलोचना खण्डकाव्य, पृ०—15
6. लोकस्वर अवधी निबन्ध संग्रह, पृ०—2,

I jdkjh o xj I jdkjh ek/; fed Lrj ds
fo | ky; ka ea v/; ; ujr fo | kffkz; ka ea fxjra eW; ka
ds i fr vfhkofr dk v/; ; u

eatw | Suh*
MKW fo".kq dækj **

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है तथा सामाजिक प्राणी होने के नाते उसे समाज के कुछ नियमों व उपनियमों का पालन करना पड़ता है। प्रत्येक समाज की एक विशिष्ट संस्कृति होती है। इन्हीं सांस्कृतिक विशिष्टताओं के कारण ही एक समाज अन्य समाजों से अपने अस्तित्व को पृथक् करके अपने सदस्यों के उन्नयन, उत्थान तथा सुरक्षा हेतु व्यवस्थाएं करता है। मूल्यों के कारण ही भारत को विश्व में आध्यात्मिक गुरु की उपाधि से विभूषित किया गया है। वास्तव में मूल्य वह धूरी हैं जिस पर विकास की दर घूमती रहती है।

I eL; k dk vkfpr; %

मूल्यों का समाज तथा व्यक्ति के जीवन में बहुत महत्व है। मूल्य ही वह आधारशीला हैं जिस पर समाज रुपी भवन खड़ा है। आज समाज में हर क्षेत्र में मूल्यों में गिरावट आई है। वर्तमान समय में विद्यार्थियों में मूल्यहीनता बढ़ती ही जा रही है। हम आये दिन न्यूज पेपर, पत्र-पत्रिकाओं में पढ़ते हैं दामिनी जैसे काण्ड होते हैं, छात्र अपनी विभिन्न प्रकार की मांगों को लेकर हड़ताल या चक्का जाम करते हैं चारों तरफ रिश्तत भ्रष्टाचार, भाई-भतीजावाद का बोल बोला है। ये सभी मूल्यहीनता के उदाहरण हैं।

विद्यार्थी दिशाहीन होकर भटक रहे हैं। उनमें विभिन्न प्रकार की गलत आदतें पड़ती जा रही हैं। ऐसे मूल्यहीन विद्यार्थी देश का क्या उत्थान करेंगे ? इसी कारण शोधकर्त्री ने मूल्यों से सम्बन्धित शोधकार्य करने का प्रयास किया है। मूल्यों पर अनेक शोध कार्य हो चुके हैं किन्तु अधिकतर शोध साहित्यिक क्षेत्र में साहित्यकारों की साहित्यिक रचनाओं में निहित मूल्यों पर हुए हैं तथा तुलनात्मक शोध हुए हैं। गिरते मूल्यों पर शोध अध्ययन नहीं हुए हैं, अतः शोधकर्त्री ने गिरते मूल्यों का अध्ययन करने का प्रयास किया है। इन सभी तथ्यों को ध्यान रखते हुए शोधकर्त्री ने इस शोध विषय का चुनाव किया है।

I eL; k dFku %

‘सरकारी व गैर सरकारी माध्यमिक स्तर के विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों में गिरते मूल्यों के प्रति अभिवृत्ति का अध्ययन’।

'kks/k ds mÍs ; %

1. सरकारी व गैर सरकारी माध्यमिक स्तर के विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों में गिरते मूल्यों के कारणों का अध्ययन करना।
2. सरकारी माध्यमिक स्तर के विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों में गिरते मूल्यों के कारणों का अध्ययन करना।
3. गैर सरकारी माध्यमिक स्तर के विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों में गिरते मूल्यों के कारणों का अध्ययन करना।

U; kn'kz % शोध के लिए 40 अध्यापकों का चयन किया गया।

*एम0एड0, छात्रा, जैन विश्व भारती विश्वविद्यालय, लाडनू, नागौर, राजस्थान।

**सहायक आचार्य, जैन विश्व भारती विश्वविद्यालय, लाडनू, नागौर, राजस्थान।

'kks/k fof/k % प्रस्तुत शोध में साक्षात्कार विधि का प्रयोग किया गया है

v/; ; u ea pj %

1. स्वतन्त्र चर – मूल्य,
2. आश्रित चर – विद्यार्थी

'kks/k dk i fj l heu %

1. प्रस्तुत शोध कार्य सीकर जिले तक ही सीमित है।
2. प्रस्तुत शोध कार्य हेतु माध्यमिक स्तर के विद्यालयों को लिया गया है।
3. प्रस्तुत शोध कार्य सरकारी विद्यालयों से 20 अध्यापक जिनमें 10 पुरुष अध्यापक तथा 10 महिला अध्यापिकाओं तथा गैर सरकारी विद्यालयों से 20 अध्यापकों जिनमें 10 पुरुष अध्यापक व 10 महिला अध्यापिकाओं तक सीमित रखा गया है।

'kks/k ds fu"d"kz %

mís ; k ds vk/kkj ij fu"d"kz %

1. सरकारी व गैर सरकारी माध्यमिक स्तर के विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों में गिरते मूल्यों के कारणों का अध्ययन करना :

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि विद्यार्थियों के गिरते मूल्यों के कारणों में अभिभावकों द्वारा दिये गये संस्कार, विद्यालय का वातावरण, तकनीकी साधनों, परिवार, अध्यापकों का व्यवहार इनका बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। ये काफी हद तक विद्यार्थियों के गिरते मूल्यों के लिए जिम्मेदार है। लगभग 100 प्रतिशत शिक्षकों ने इन सभी कारकों को विद्यार्थियों के गिरते मूल्यों के लिए जिम्मेदार माना है। पाठ्यक्रम भी महत्वपूर्ण कारक है लगभग अधिकांश शिक्षकों ने पाठ्यक्रम को भी काफी हद तक विद्यार्थियों के गिरते मूल्यों के लिए जिम्मेदार है। लेकिन कुछ शिक्षकों एवं कुछ सरकारी स्तर की महिला शिक्षकों का मानना है कि पाठ्यक्रम विद्यार्थियों के गिरते मूल्यों को प्रभावित नहीं करता लेकिन इन्होंने भी पाठ्यक्रम में गुणवत्ता का अभाव होना, पाठ्यक्रम का व्यावहारिक जीवन में उपयोगी न होना माना, पाठ्यक्रम का लम्बा होना माना है। 100 प्रतिशत शिक्षकों ने विद्यार्थियों के गिरते मूल्यों का कारण माना है। विद्यालय की उपलब्ध सुविधाओं को लगभग 90 प्रतिशत शिक्षकों ने विद्यार्थियों के गिरते मूल्यों का कारण माना है जिनमें शिक्षकों की कमी को होना सबसे महत्वपूर्ण माना है। लेकिन सभी शिक्षकों की राय में उनके विद्यालय में सभी सुविधाएँ उपलब्ध है।

100 प्रतिशत शिक्षकों का कहना है कि जाति के आधार पर पक्षपात/भेदभाव नहीं होता है विद्यालय स्तर पर तो बिल्कुल नहीं होता अतः मूल्य प्रभावित नहीं होते। यदि पक्षपात होगा तो मूल्य प्रभावित होंगे। गैर सरकारी स्तर के लगभग 100 प्रतिशत शिक्षकों की राय है कि गैर सरकारी विद्यालयों में शिक्षकों पर अन्य कार्यों का सरकारी दबाव नहीं होता। अतः वहां मूल्य प्रभावित नहीं होते लेकिन सरकारी स्तर के विद्यालयों में शिक्षकों पर सरकारी दबाव होता है। अतः विद्यार्थियों के गिरते मूल्य प्रभावित होते हैं।

अतः अन्त में निष्कर्ष के तौर पर कहा जाता है कि सभी कारक विद्यार्थियों के गिरते मूल्यों के लिए जिम्मेदार है। कुछ कारक सर्वाधिक प्रभावित करते हैं तो कुछ कारक कुछ कम प्रभावित करते हैं लेकिन सभी कारक प्रभावित करते हैं।

2. सरकारी माध्यमिक स्तर के विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों में गिरते मूल्यों के कारणों का अध्ययन करना :

निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि विद्यार्थियों के गिरते मूल्यों के कारणों में अभिभावकों द्वारा दिए गए संस्कार, विद्यालय का वातावरण, तकनीकी साधन, परिवार, अध्यापकों का व्यवहार इनका बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। लगभग 100 प्रतिशत शिक्षकों ने इन सभी कारकों को विद्यार्थियों के गिरते मूल्यों के लिए जिम्मेदार माना है कुछ शिक्षकों ने तकनीकी साधनों का छात्र के द्वारा उपयोग (यूज) के आधार पर प्रभाव होना माना है।

पाठ्यक्रम भी महत्वपूर्ण कारक है। अधिकांश पुरुष शिक्षकों एवं कुछ महिला शिक्षकों ने पाठ्यक्रम को विद्यार्थियों गिरते मूल्यों के लिए जिम्मेदार माना है। लेकिन जिन शिक्षकों ने पाठ्यक्रम को विद्यार्थियों के गिरते मूल्य को कम प्रभावित होना माना है। उन्होंने भी पाठ्यक्रम में गुणवत्ता का अभाव, व्यावहारिक जीवन में उपयोगी न होना, पाठ्यक्रम का थ्योरीकल अधिक होना माना है। पाठ्यक्रम का लम्बा होना आदि। इस प्रकार पाठ्यक्रम भी विद्यार्थियों के मूल्यों को प्रभावित करना हो। मूल्यांकन प्रणाली को लगभग 100 प्रतिशत शिक्षकों ने विद्यार्थियों के गिरते मूल्यों का कारण माना है। जिसमें ग्रेडिंग सिस्टम व 8वीं तक सभी को पास करने के सिस्टम को सभी न गलत माना है। शिक्षकों का मानना है कि इससे पढ़ने वाले न पढ़ने वाले दोनों ही तरह के विद्यार्थियों में श्रम के प्रति अरुचि व नीरसता की भावना उत्पन्न होती है जो बच्चों के विकास के लिए ठीक नहीं है। विद्यालय की उपलब्ध सुविधाओं को 95 प्रतिशत से अधिक शिक्षकों ने विद्यार्थियों के गिरते मूल्यों का कारण माना है जिनमें सभी शिक्षकों ने शिक्षकों की कमी को महत्वपूर्ण कारण माना है। केवल 5 प्रतिशत से भी कम शिक्षकों ने विद्यालय की उपलब्ध सुविधाओं को कोई ज्यादा प्रभावी कारण नहीं माना है इनका मानना है कि सुविधाएं ज्यादा प्रभावित नहीं करती जितने भी महान् या बड़े व्यक्ति हुए है सभी अभावों से निकलकर बड़े बने है साथ ही सभी शिक्षकों की राय में उनके विद्यालय में सभी सुविधाएं उपलब्ध है। 100 प्रतिशत शिक्षकों का माना है कि जाति के आधार पर पक्षपात अथवा भेदभाव नहीं होता है। विद्यालय स्तर पर तो बिल्कुल भी नहीं होता है। यूनिफॉर्म इसीलिए रखी जाती है। अतः मूल्य प्रभावित नहीं होते और यदि कहीं जाति के आधार पर भेदभावपूर्ण व्यवहार होता है तो मूल्य प्रभावित होते है। उच्च शिक्षा स्तर पर जाति आधारित आरक्षण व्यवस्था प्रभावित करती है।

100 प्रतिशत शिक्षकों का मानना है कि शिक्षकों पर सरकारी दबाव रहता है। शिक्षकों पर अन्य सरकारी कार्यों का दबाव रहता है जिससे शिक्षक पूर्णता शिक्षण कार्य ठीक से नहीं करवा पाते और ना ही पाठ्यक्रम समय पर पूरा करवा पाते हैं। अतः शिक्षकों पर अन्य सरकारी कार्यों का दबाव छात्रों के गिरते मूल्यों के लिए जिम्मेदार है। अतः अन्त में निष्कर्ष के तौर पर कहा जा सकता है कि सभी कारक विद्यार्थियों के गिरते मूल्यों के लिए जिम्मेदार है। कुछ कारक सर्वाधिक प्रभावित करते है तो कुछ कारक कम प्रभावित करते है। लेकिन सभी कारक प्रभावित करते हैं।

3. सरकारी व गैर सरकारी माध्यमिक स्तर के विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों में गिरते मूल्यों के कारणों का अध्ययन करना।

निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि विद्यार्थियों गिरते मूल्यों के कारणों में अभिभावकों द्वारा दिए गए संस्कार, विद्यालय का वातावरण, परिवार अध्यापकों का व्यवहार तकनीकी साधन इनका बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। ये काफी हद तक विद्यार्थियों के गिरते मूल्यों के लिए जिम्मेदार है। लगभग 100 प्रतिशत शिक्षकों ने इन सभी कारकों को विद्यार्थियों के गिरते मूल्यों के लिए जिम्मेदार माना है तकनीकी साधनों के सम्बन्ध में लगभग 10 प्रतिशत शिक्षकों की राय है कि तकनीकी साधनों का उपयोग गिरते मूल्यों को प्रभावित करता भी है और नहीं भी करता। हर सिक्के के दो पहलू होते हैं। आज इन्टरनेट के जरिये संसार के किसी भी कोने में कोई भी जानकारी सैकड़ों में प्राप्त कर सकते है। इसका अनुचित उपयोग नकारात्मक प्रभाव डालता है। ये इसके उपयोग पर निर्भर करता है। पाठ्यक्रम के सम्बन्ध में लगभग 90 प्रतिशत से अधिक शिक्षकों का मानना है कि पाठ्यक्रम विद्यार्थियों के गिरते मूल्यों को प्रभावित करता है। लेकिन 10 प्रतिशत से भी कम शिक्षकों का मानना है कि पाठ्यक्रम विद्यार्थियों के गिरते मूल्यों को प्रभावित नहीं करता लेकिन इन्होंने भी पाठ्यक्रम में गुणवत्ता का अभाव होना पाठ्यक्रम को व्यावहारिक जीवन में उपयोगी ना होना, पाठ्यक्रम का लम्बा होना, पाठ्यक्रम में क्रमबद्धता का अभाव आदि को माना है। विद्यालय की उपलब्ध सुविधाओं के सम्बन्ध में लगभग 95 प्रतिशत शिक्षकों का मानना है कि विद्यालय की सुविधाएं विद्यार्थियों के गिरते मूल्यों के लिए जिम्मेदार है। लेकिन लगभग 5 प्रतिशत शिक्षकों का मानना है कि विद्यालय की सुविधाएं इतना ज्यादा प्रभावित नहीं करती हैं लगभग सभी शिक्षकों का मानना है कि आजकल

सुविधाएँ सभी विद्यालयों में उपलब्ध होती है। गैर सरकारी स्तर के विद्यालयों में सभी सुविधाएँ होती हैं। सभी विद्यालय अपने यहां सभी सुविधाएँ देना चाहते हैं। शिक्षकों ने शिक्षकों की कमी को मुख्य कारण माना है। 100 प्रतिशत शिक्षक ने मूल्यांकन प्रणाली को विद्यार्थियों के गिरते मूल्यों के लिए जिम्मेदार माना है। जिसमें ग्रेडिंग सिस्टम व 8वीं तक सभी को पास करने का ग्रेडिंग सिस्टम गलत है। जिससे बच्चों में पढाई के प्रति अरुचि उत्पन्न होती है। 100 प्रतिशत शिक्षकों ने माना है कि जाति के आधार पर पक्षपात नहीं होता है। विद्यालय स्तर पर तो बिल्कुल नहीं होता अतः मूल्य प्रभावित नहीं होते। यदि पक्षपात पूर्ण व्यवहार होगा तो मूल्य प्रभावित होंगे। लेकिन सभी कारक प्रभावित करते हैं। लगभग सभी शिक्षकों का मानना है कि शिक्षकों पर सरकारी कार्यों का दबाव विद्यार्थियों के गिरते मूल्यों को प्रभावित करता है।

गैर सरकारी स्तर के लगभग लगभग सभी शिक्षकों का मानना है कि गैर सरकारी विद्यालयों में शिक्षकों पर अन्य कार्यों का सरकारी दबाव नहीं होता। अतः शिक्षकों का मानना है कि सरकारी स्तर के लगभग विद्यालयों में शिक्षकों पर अन्य कार्यों का दबाव रहता है। गैर सरकारी स्तर के विद्यालयों में केवल शिक्षकों पर शिक्षण का ही दबाव रहता है। अतः अन्त में निष्कर्ष के तौर पर कहा जा सकता है कि सभी कारक विद्यार्थियों के गिरते मूल्यों के लिए जिम्मेदार हैं कुछ कारक अधिक प्रभावित करते हैं कुछ कारक कम प्रभावित करते हैं।

Hkkoh 'kks/k grq | p-ko %

1. प्रस्तुत शोध राजस्थान के सीकर जिले तक ही सीमित है। अतः इस शोध कार्य को अन्य जिलों पर भी कर सकते हैं।
2. प्रस्तुत शोध माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों तक ही सीमित है। भावी शोध में इस प्राथमिक अथवा उच्च माध्यमिक स्तर पर किया जा सकता है।
3. प्रस्तुत शोध केवल सरकारी व गैर सरकारी विद्यालयों के विद्यार्थियों पर किया गया है भावी शोध ग्रामीण व शहरी विद्यालयों के अध्ययनरत विद्यार्थियों पर कर सकते हैं।
4. शोधकर्त्री द्वारा चुना गया क्षेत्र सीमित है। भावी शोधार्थी इस क्षेत्र को विस्तृत/बड़ा चुन सकते हैं।

'kks/kd fufgrkfkZ

1. प्रस्तुत अध्ययन सीकर जिले के विद्यार्थियों के गिरते मूल्यों के प्रति शिक्षकों के विचारों को स्पष्ट कर सकेगा।
2. प्रस्तुत अध्ययन माध्यमिक स्तर पर पाठ्यक्रम निर्माताओं के लिए निर्देश दे सकेगा।
3. प्रस्तुत अध्ययन भावी शोधकर्ताओं को गिरते मूल्यों की दिशा में शोधकार्य करने हेतु प्रेरित करेगा।
4. प्रस्तुत अध्ययन शिक्षा नियोजकों, शिक्षा विभाग के अधिकारियों माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, राजस्थान के अधिकारियों को उनके कार्यक्रमों में निवेशात्मक भूमिका प्रदान करेगा।

I UnHkZ %

1. समणी, मल्लिप्रज्ञा, 2009, "जीवन विज्ञान एवं प्रेक्षाध्यान एवं योग", जैन विश्वभारती विश्वविद्यालय, लाडनूँ, राजस्थान
2. शर्मा, आर.ए., 2009, "शिक्षा अनुसंधान", आर. लाल बुक डिपो, मेरठ
3. सरीन, श्रीमती शशिकला एवं सरीन, अंजली 2008, "शैक्षिक अनुसंधान विधियाँ" विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा
4. रायजादा, बी. एस. एवं शर्मा, वन्दना, 2008, "शिक्षा में अनुसंधान के आवश्यक तत्व", राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर
5. समणी, ऋजु प्रज्ञा एवं समणी श्रेयस प्रज्ञा, 2008, "जीवन विज्ञान और स्वास्थ्य" जैन विश्वभारती विश्वविद्यालय, लाडनूँ, राजस्थान
6. सुखिया, एस.पी., 1964, "शैक्षिक अनुसंधान के मूल तत्व" विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा

ekDI bknh fopkj/kjk , oa nfyx oxl

MKND | Urk'sk d'ekj i k. Ms *

माक्सवाद एक विचारधारा है। दलित निर्मित का मूल स्रोत डा० अम्बेडकर की विचार-व्यवस्था में है, जो 'अम्बेडकरवाद' नाम से अभिहित है। माक्सवाद का उदय 19वीं सदी के मध्य में और विकास 20वीं सदी में हुआ। भारत में इस विचारधारा का परिचय स्वाधीनता संग्राम के दौरान 1920 के बाद ही होने लगा था। बाबा साहब डा० अम्बेडकर की विचार-सरणि का परिचय भी 1920 के बाद ही होता है। इस विचार से प्रेरित होते हुए महाराष्ट्र में दलित साहित्य का सृजन होने लगा और दलित कवि, दलित कहानीकार, दलित राजनीतिकार, दलित उपन्यासकार अपनी अलग पहचान देने लगे।

माक्सवाद और दलित की प्रकृति परिवर्तनवादी एवं प्रगतिशील है। इन दोनों विचारधाराओं को एक-दूसरे का विरोधी कहने के बजाय एक ही सिक्के के दो पहलू कहना अधिक तर्कसंगत है। विचारों की दिशा और व्यवहार का रास्ता अलग होते हुए भी माक्सवाद और अम्बेडकरवाद का अंतिम लक्ष्य एक ही है—शोषण मुक्त समाज का निर्माण।¹ पूँजीवाद अर्थव्यवस्था के परिणामस्वरूप समाज में सर्वस्व वंचित तबकों का शोषण होता रहा है। इसीलिए माक्स-एंगल्स पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में क्रान्तिकारी बदलाव चाहते हैं। वर्णवादी समाज व्यवस्था के परिणामस्वरूप समाज में अछूतों जैसे सर्वस्व वंचित तबकों का शोषण होता रहा है। इसीलिए डा० अम्बेडकर वर्णवादी समाज व्यवस्था में क्रान्तिकारी बदलाव चाहते थे। शोषणमुक्त समाज का निर्माण तब प्रत्यक्षरूप से होना संभव है जब आर्थिक विशमता और सामाजिक विषमता का निर्मूलन होगा। सन् 1927 में डा० अम्बेडकर ने महाड़ में वर्णवादी हिन्दूधर्म के विरोध में जो आंदोलन छेड़ा था वह दलित मुक्ति आंदोलन का प्रेरणास्रोत थी।² महात्मा गाँधी ने इस सामाजिक समस्या को अग्रस्थान नहीं दिया था। और यह भी सच है कि उन्होंने सर्वधर्म समभाव के नाम पर वर्णव्यवस्था को सुरक्षित रखा था। अछूतों के उद्धार के पक्षधर होते हुए भी वर्णव्यवस्था को उन्होंने स्वीकार किया था। डा० अम्बेडकर गाँधीवादी से सहमत नहीं थे और न ही साम्यवाद से उनकी अपनी वास्तविक धारणा यह थी कि भारतीय समाज व्यवस्था का मूलाधार वर्गभेद नहीं बल्कि वर्ण भेद है वर्णव्यवस्था के कारण ही आर्थिक विषमता बढ़ती जा रही है। हिंदू-धर्म की परिभाषा के अनुसार दलितों को अभ्युदय के अवसर एवं हक से भी वंचित रखा गया था। इतना ही नहीं 'मनुस्मृति' जिसमें चार वर्णों की आचारसंहिता निहित है, ने ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य को शट्कर्मों के अधिकार प्रदान करते हुए शूद्र वर्ण को उन तीन वर्णों की मात्र सेवा करने के लिए मानो नियुक्त कर रखा था।³ परिणामस्वरूप सदियों से शूद्र वर्ण जिसका बड़ा हिस्सा अछूत समाज है पर सामाजिक दासता लादी गयी और अछूत समाज न केवल आर्थिक शोषण बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक शोषण का भी शिकार बन गया था। धार्मिक व्यवस्था पर कुठाराघात करना महात्मा गाँधी को मंजूर नहीं था और धर्म को अफीम कहते-कहते माक्स ने धर्म के अग्रस्थान पर अर्थ की प्रस्थापना करने के कारण साम्यवाद ने धर्मव्यवस्था पर कुठाराघात करने को दखलअंदाज नहीं माना। मानवीय जीवन के सभी ब्यवहार अर्थमूलक होते हैं यही माक्स के 'मूलाधार और अधिरचना' सिद्धान्त का निष्कर्ष है। लेकिन भारतीय समाज की धारणा में सभी व्यवहार

*असि० प्र०, राजनीति विज्ञान विभाग, आर०एस०के०डी०पी०जी० कालेज, जौनपुर, उ० प्र०

धर्म मूलक होते हैं। धर्म यह मूलाधार और अर्थ, काम आदि पुरुषार्थों से संबंधित बाकी सारी व्यवस्थाएँ अधिरचना है। इसीलिए डा0 अम्बेडकर ने दलित मुक्ति के लिए हिन्दू धर्म के विरोध में आन्दोलन छेड़ा। यह आन्दोलन साम्यवादी आन्दोलन के विरोध में नहीं था। हिन्दू समाज व्यवस्था के विरोध में था।

कार्ल मार्क्स की वर्ग-संघर्ष की संकल्पना में ही एक मूलभूत अंतर्विरोध है। सामाजिक विकास के दौरान हर मोड़ पर 'संघर्ष करने वाले वर्ग' बदलते रहते हैं।⁴ सामाजिक परिवर्तन में वर्ग-संघर्ष की समस्या का हल निकालने की प्रक्रिया में नये संघर्षशील वर्ग एवं नये संघर्ष और आते हैं। बीसवीं सदी के दो दशकों में मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित होकर औद्योगिक विकास की प्रक्रिया में पूँजीवादी के विरोध में मेहनतकश मजदूर वर्ग को संगठित करते हुए वर्गसंघर्ष तीव्र किया जा रहा था। जब कि तीसरे-चौथे दशक में डा0 अम्बेडकर के नेतृत्व में अछूत समाज एक संघर्षशील समाज के रूप में उभर आया। मार्क्स का निष्कर्ष है कि मानवीय चेतना के सारे संरचनाओं का मूलाधार उत्पादन पद्धति है। डा0 अम्बेडकर इससे सहमत नहीं थे। उनके विचारों के मुताबिक भारतीय समाज व्यवस्था में मानवीय चेतना की सभी सामाजिक संरचनाएँ वर्णों पर आधारित होने के कारण जाति भेद ही उनका मूलाधार है। संरचनाओं में हर बात यंत्र की तरह एवं कठोरता पूर्वक उत्पादन पद्धति के मुताबिक निर्धारित होती रहती है ऐसा स्वीकार करने में भूल हो सकती है। किसी भी सिद्धान्त के ऐसे साधारणीकरण का मार्क्स और एंगल्स ने निषेध किया है। एंगल्स ने स्पष्ट रूप में कहा था, कि "इतिहास का निर्णायक तत्व अन्ततोगत्वा वास्तविक जीवन का उत्पादन और पुनरुत्पादन है।"⁵ लेकिन साथ में यह भी कहा है कि, "इससे अधिक न मार्क्स ने और न मैंने ही कभी कहा है। अतः यदि कोई इसे तोड़-मरोड़ कर यो कहे कि आर्थिक तत्व ही एक मात्र निर्णायक तत्व है तो वह हमारी प्रस्थापना को निरर्थक, अपूर्ण और खोखली शब्दावली मात्र बना देता है।"⁶

इतना स्पष्ट इशारा देने के बावजूद मार्क्सवाद के भारतीय अनुयायियों ने साम्यवादी आन्दोलन के द्वारा वर्ग-संघर्ष को आर्थिक सतह तक ही सीमित रखा। डा0 अम्बेडकर इस वस्तु स्थित को नजर अंदाज कैसे करते? वे समझ गये थे कि वर्ग संघर्ष द्वारा जाति भेद का निर्मूलन होना असंभव है और जाति भेद का निर्मूलन होने अछूतों को सामाजिक न्याय मिलना विलम्बित होता जायेगा। इसीलिए आर्थिक तत्व को स्वीकार करते हुए भी उन्होंने वर्ग संघर्ष पर ही बल दिया और दलित मुक्ति का आन्दोलन छेड़ा। वर्ग संघर्ष का हथियार देकर मार्क्स ने क्रान्ति की जिम्मेदारी श्रमजीवी वर्ग एवं मेहनतकश मजदूरों के हाथों में सौंप दी थी। जबकि वर्ण-संघर्ष का हथियार देकर डा0 अम्बेडकर ने भारतीय समाज में आमूलचूल क्रान्ति करने की जिम्मेदारी दलितों को सौंप दी। दलित साहित्य यह जिम्मेदारी निभाने के लिए अम्बेडकरवादी विचारधारा से प्रतिबद्ध है।

मार्क्सवादी साहित्य से मिली जुली दृष्टि को स्वीकार करते हुए भी दलित साहित्य के निर्माण की मूलभूत प्रेरणा डा0 अम्बेडकर के तत्व विचारों में है। उनके तत्व विचारों में तीन प्रमुख सूत्र थे—

1. स्वाभिमान, स्वावलम्बन और स्वोद्धार। ये मुक्ति की मूलभूत प्रेरणाएँ हैं। 2. शिक्षा, संगठन और संघर्ष। ये मुक्ति के साधन हैं और 3. मानवीय हक एवं अधिकार भीख माँगने से नहीं मिलते बल्कि उनको पाने के लिए संघर्ष करना एवं लड़ना अनिवार्य होता है।

किसी भी सामाजिक ढाँचे में मनुष्य जाति के हजारों वर्षों के विश्वास, शोषण की पद्धति, जीवन व्यवहार की प्रणालियाँ और सांस्कृतिक – आर्थिक संबंध बने रहते हैं। यह परम्परागत ढाँचा तब टूटेगा जब इन विश्वासों और सामाजिक-सांस्कृतिक विरासत को बदलने के लिए क्रान्तिकारी स्तर पर काम होगा। जन साहित्य इस काम में अपनी अहम् भूमिका निभाता है।

मार्क्स ने लिखा है कि तत्वचिंतकों ने भिन्न-भिन्न तरीके से विश्व का मात्र स्पष्टीकरण दिया है। लेकिन महत्वपूर्ण मुद्दा यह है कि विश्व को कैसे बदलें। (philosophers merely explained the world in different way, the point is how is change the world)⁸ इस विश्व को कैसे बदला जाय यही तो मार्क्स ने विभिन्न सिद्धान्तों के रूप में बताया है। दलित साहित्यकार जानते हैं कि डा0 अम्बेडकर भी

अपने तत्त्वविचारों द्वारा यही समझाते रहे कि विश्व को कैसे बदला जाये। इसीलिए यह मानना ठीक नहीं कि दलित साहित्य मार्क्सवाद से ताल्लुक नहीं। मार्क्स के सिद्धान्तों और अम्बेडकर के तत्व विचारों को व्यवहार में किस तरह चरित्रार्थ किया जाये यह राजनीतिक पार्टियों का कार्य है। 'सिद्धान्त और व्यवहार' प्रत्यक्षगत अनुभवों का यथार्थ चित्रण करना यह साहित्य का महत्वपूर्ण कार्य है। राजनीतिक एवं सामाजिक जिम्मेदारी तब तक महसूस नहीं होती जब तक लेखक यथार्थ की स्थित से सम्बन्ध नहीं हो सकता इसलिए प्रतिबद्ध लेखन की संकल्पना में सम्बद्धता का भी अंतर्भाव है। प्रतिबद्धता की संकल्पना ने मार्क्सवादी विचारधारा को नया आयाम दिया और अम्बेडकरवादी विचारधारा को भी।

धर्मांतरण का अर्थ यह नहीं था कि दलित समाज अकस्मात् मानवीय अधिकार एवं सामाजिक प्रतिष्ठा का हकदार बन गया। डॉ० अम्बेडकर हिंदू मानसिकता में परिवर्तन चाहते थे और साथ ही जाति व्यवस्था का निर्मूलन भी। अभिव्यक्ति का यह विस्फोट, 1960 के बाद शुरू हुए दलित विचारधारा का मूलस्रोत था।⁹

डॉ० बाबा साहेब अम्बेडकर स्वयं एक अर्थशास्त्री होने के नाते कार्लमार्क्स के आर्थिक सिद्धान्तों से अवगत थे। लेकिन उनके विचार का मुख्य मुद्दा यही था कि भारतीय समाज व्यवस्था की दृष्टि से जातिव्यवस्था का निर्मूलन होना सर्वप्रथम आवश्यक है। इसीलिए उन्होंने वर्ण-संघर्ष पर बल दिया। फिर मार्क्सवाद पर आपत्ति का सवाल ही कहाँ उठता है? सही बात यह है कि बौद्धधर्म को स्वीकार करने के पश्चात डॉ० अम्बेडकर ने बौद्धधर्म की दृष्टि से मार्क्सवाद की आलोचना की और ऐसा निष्कर्ष प्रस्थापित किया कि कार्लमार्क्स का दिखाया हुआ शोषण-मुक्ति का क्रान्तिकारी मार्ग हिंसा का मार्ग था। दूसरे शब्दों में कहें कि मार्क्सवाद में हिंसा को स्थान है, जबकि बुद्ध के तत्त्वविचारों में हिंसा वर्ज्य है। अहिंसा का मार्ग मात्र समता, स्वाधीनता एवं बंधुता के द्वारा मनुष्य को धर्म की ओर ले जाने वाला है। डॉ० अम्बेडकर का अपने अनुयायियों को यही संदेश था कि इसी 'मुक्तिपथ' से चलना है।¹⁰

अधिकांश दलित लेखक मार्क्सवादी विचारों के प्रभाव से अपने आपको बचाकर डॉ० अम्बेडकर के विचारों तक सीमित रखना पसंद करते रहे। लेकिन बावजूद इसके समकालीन परिवर्तित राजनीतिक एवं सामाजिक परिस्थितियों का दलित युवा पीढ़ी पर असर अनिवार्य रूप से होता रहा, जिसके कारण उनकी विद्रोह की भावना अधिक तीव्र होती गयी। मात्र वर्णव्यवस्था के विरोध में ही नहीं बल्कि स्वाधीनतोल्लरकालीन राजनीति के विरोध में भी उनका प्रक्षोभ तीव्र हुआ। इसके परिणामस्वरूप युवा पीढ़ी ने अम्बेडकरवाद और मार्क्सवाद के समन्वय में दलित मुक्ति का मार्ग तलाशा।

I UnHkz %

1. सदा कन्हाडे, मार्क्सवाद और दलित साहित्य, वसुधा-58, जुलाई-सितम्बर, 2003, पृ० 41.
2. सुभाष चन्द्र, अम्बेडकर से दोस्ती-समता और मुक्ति, इतिहासबोध प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 2006, पृ० 28-30 .
3. मनुस्मृति, 1-91 .
4. सदाकन्हाडे, मार्क्सवाद और दलित साहित्य, वसुधा-58, जुलाई-सितम्बर, 2003, पृ० 49
5. वही, पृ० 50 .
6. वही, पृ० 50
7. वही, पृ० 50
8. ओम प्रकाश गाबा, सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया, समकालीन राजनीति सिद्धान्त, मयूर पेपर बैक्स, नोएडा, चतुर्थ नव-निर्मित संस्करण, 2004, पृ० 368.
9. सदा कन्हाडे, मार्क्सवाद और दलित साहित्य, वसुधा-58, जुलाई-सितम्बर, 2003, पृ० 55
10. वही, पृ० 55

डॉ० सम्पूर्णानन्द जी के सामाजिक विचार उनके द्वारा रचित पुस्तकों एवं विशेष आयोजन के समय दिये गये भाषणों से स्पष्ट रूप से प्रकट होते हैं। वस्तुतः डॉ० सम्पूर्णानन्द जी निर्भिक विचारक और प्राचिन चिन्तकों की परिपाटी के दार्शनिक थे। उनके विचार और भावनायें शाश्वत सत्य पर आधारित हैं यदि उनके विचारों के अनुरूप समाजवादी व्यवस्था का स्वरूप गढ़ा गया होता, तो भारतीय जनता की प्रगति और उन्नयन का वास्तविक स्वरूप मुखर हो जाता। समाजवाद के प्रारम्भ में ही श्री सम्पूर्णानन्द जी ने वह शाश्वत प्रश्न उठाया जो महात्मा बुद्ध और महात्मा गांधी जी के मस्तिष्क का मंथन कर रहा था – “संसार में इतने दुःख क्यों हैं? पदार्थ की अपार राशि प्रतिवर्ष उत्पन्न होती है, मिलो से वस्त्रों के पहाड़ निकलते हैं लाखों वर्ग कोश बसने योग्य भूमि पड़ी है, एक देश में उत्पन्न वस्तु दूसरे देश में पहुंच सकती है, घातक रोगों पर चिकित्साशास्त्र विजय प्राप्त करता जा रहा है फिर भी इतने नंगे, भूखे, रोगी, निराश्रय क्यों हैं? सुख के साधन थोड़े से व्यक्तियों को ही क्यों लभ्य हैं? राष्ट्रों की स्वतन्त्रता का क्यों अपहरण किया जाता है? युद्ध क्यों होते हैं? मनुष्य जल, वायु और विद्युत को अपने वश में कर सकता है। अरबों कोश की निहारिकाओं को दृष्टिगत कर सकता है। अगोचर परमाणुओं की गतिविधि की गणना कर सकता है, पर उसकी वृद्धि जीवन को संगठित क्यों नहीं कर सकती।”

यह इस बात का परिचायक है कि उनके हृदय में निर्धन व्यक्ति के प्रति कितनी ममता थी। उनकी समस्या उनके विचारों का मंथन करती थी। अतएव वह मूलतः एक समाजवादी थे, किन्तु उनका समाजवाद मार्क्स का समाजवाद नहीं था जिसमें धर्म का स्थान नहीं। डॉ० सम्पूर्णानन्द जी का समाजवाद धर्म पर आधारित था। धर्म पण्डों और पुजारियों का नहीं बल्कि धर्म, गीता का धर्म, स्वधर्म है। जिसमें नैतिकता राष्ट्र की आधारशिला है वह भारतीय संस्कृति एवं धर्म के महान उपासक थे। अतएव वह सही मायने में समन्वयवादी थे। उनका समाजवाद मानवतावादी है। मानव के प्रति उनके मन में टीस थी और वे केवल मानव की अच्छाई में विश्वास करते थे।

लोकोपयोग शासन की कल्पना में निरत श्री सम्पूर्णानन्द जी समाजवादी व्यवस्था के अतिरिक्त कोई और व्यवस्था नहीं सोच पाते हैं। यद्यपि उन्होंने अपने समाजवाद की व्याख्या स्वयं की है। समाजवाद के सम्बन्ध में उन्होंने जो कुछ भी लिखा है वह उनके कार्यों और विचारों से प्रकट होता है। उनकी कल्पना का समाज आर्थिक कोरा समृद्धि का समाज नहीं, बल्कि उनकी समाजवादी व्यवस्था में पनपने वाला समाज आशावादिता, चारित्रिक संगठन और आध्यात्मिक उन्नति के लिए अग्रसर होता हुआ समाज था। उनका ऐसा विश्वास था कि जो समाज केवल आर्थिक आधार पर खड़ा होगा वह समाज खोखला मात्र होगा और जब कभी भी उसे सांसारिक सुख-सुविधाओं की कमी का अनुभव होगा, वह इच्छाविधात् से प्रताड़ित होने लगेगा।

श्री सम्पूर्णानन्द जी का विचार है कि यदि वर्ग संघर्ष मिटाना है तो यह जरूरी नहीं कि वर्गों को ही मिटा दिया जाये, बल्कि यदि वर्ग संघर्ष मिटाना है तो उत्पादन की सारी सामग्री समाज की सम्पत्ति

हो जानी चाहिये। यदि ऐसा हो गया तो कोई भी व्यक्ति किसी का शोषण नहीं कर सकेगा। सभी लोग एक वर्ग—श्रमिक, मजदूर वर्ग के होंगे।¹ इस प्रकार वे वर्ग सहयोग के हिमायती थे।

श्रम के आधार पर ही पूंजी का निर्धारण किया जाना चाहिये। जब बिना किसी दबाव, लालच के सभी अपने सामर्थ्य भर श्रम करेंगे, तब सार्वजनिक भण्डार सब के पूर्ण श्रम से भरपूर होगा। उसमें से प्रत्येक व्यक्ति जरूरत के अनुसार ले लेगा। वे पृथ्वीलोक पर स्वर्गलोक स्थापित करना चाहते थे। स्वर्ग स्थापित करने का अर्थ है सभी लोग सुखी और समृद्ध हो, स्वस्थ और ज्ञान सम्पन्न हों। उनका यह आग्रह था कि मनुष्य क्षुद्र बातों के लिए अपनी मनुष्यता न खो बैठे। प्रत्येक व्यक्ति अपनी सांस्कृतिक उन्नति करे उनके अनुसार “जो व्यक्ति ऐसा मानते आये हैं कि मनुष्य योनी सभी योनियों में श्रेष्ठ है। उनको तो यह बात अवश्य स्वीकार कर लेनी चाहिये कि मनुष्य अपने इस कर्म और भोग क्षेत्र अर्थात् पृथ्वी को स्वर्गलोक मुकुटमणी, सच्ची वसुधरा बना सकता है।”³

डॉ० सम्पूर्णानन्द जी के समाजवाद की व्याख्या करते हुए महात्मा गांधी जी ने कहा था “उनका समाजवाद जहाँ समाजवाद के सभी प्रचलित सिद्धान्तों को स्वीकार करता है वहीं इसमें कुछ विषमता भी है।”⁴ महात्मा गांधी जी ने डॉ० सम्पूर्णानन्द को एक पत्र में लिखा था कि वे इस अन्तर का अनुभव तो कर सकते हैं मगर यह अन्तर क्या है वह ठीक से नहीं कर सकते। श्री सम्पूर्णानन्द जी ने इसके उत्तर में कहा था कि यह अन्तर उनके दार्शनिक दृष्टिकोण का है।

महात्मा गांधी जी के कथनानुसार— “श्री सम्पूर्णानन्द जी जिस समाजवाद की बात करते हैं यदि वास्तव में वही समाजवाद है तो मैं भी इस समाजवादी व्यवस्था को स्वीकार करता हूँ।” विद्यापीठ हीरक जयन्ती समारोह में दीक्षान्त भाषण करते हुए भी सम्पूर्णानन्द जी ने कहा था कि “समाजवाद की पुस्तक में क्या—क्या पढ़ाया जाता है मैं नहीं जानता। समाजवाद पर आप लोगों ने बहुत कुछ लिखा पढ़ा होगा। किसी समय मैंने विद्यापीठ में सोशलिज्म पढ़ाया है बहुत से विद्वान हुये हैं, जिन्होंने समाजवाद पर लिखा पढ़ा है। दुनियां में सबसे आगे नाम कार्ल मार्क्स का लिया जाता है और उनके साथी एंजल्स का। मार्क्स के कार्यक्रमों की जो फिलास्फी है वह सारी दुनियां में कम्युनिज्म का आधार है और इसी फिलास्फी पर कम्युनिज्म टीका हुआ है। कम्युनिज्म की आधारशिला वही है अगर वह न माना जाये तो कम्युनिज्म का रूप किसी भी देश में नहीं रह सकता। यह हर कम्युनिज्म मानता है और उनका मानना सोलह आने ठीक है। मार्क्स का अभिमत सोशलिज्म बहुत बड़ी चीज है लेकिन उसका वह रूप टिका हुआ है मार्क्सज्म की फिलास्फी पर हम यदि कही सचमुच सोशलिज्म लाना चाहते हैं तो हम ऐसा कदापि नहीं कर सकते जब तक कि उसके लिये कोई दार्शनिक आधार न दृढ़ हो। कोई शास्त्रीय विषय हो, वह भौगोलिक बन्धनों में नहीं बांधा जा सकता। सोशलिज्म का जो स्वरूप भारत में स्थिर किया जायेगा वह किसी वैस्टन कन्ट्री या अफ्रिका में नहीं हो सकता, ऐसी बात नहीं है। कार्यक्रम अलग—अलग हो सकते हैं लेकिन सोशलिज्म एक ही होगा। अगर मैं इण्डियन सोशलिज्म कहता हूँ तो मेरा मतलब यह है कि सोशलिज्म के उस स्वरूप से जिसका उदय भारत वर्ष में हुआ है यदि वह ठीक है तो जर्मनी में, अफ्रिका में सारी दुनियां में लागू होगा। यदि गलत है तो भारत के लिये भी गलत है।”⁵

श्री सम्पूर्णानन्द जी ने कहा था कि सोशलिज्म केवल इटानामिक प्रोग्राम नहीं। केवल आर्थिक प्रोग्राम का नाम ही समाजवाद नहीं है। समाजवाद जीवन का एक दर्शन है। यदि हम सचमुच समाजवाद का कार्यक्रम बनाना चाहते हैं, तो देखना होगा कि उसका कौन सा रूप हर जगह चलाया जा सकता है। अब यह प्रश्न उठता है कि समाजवाद ठीक—ठीक कैसे बनेगा? समाजवाद में व्यक्ति का क्या स्थान होगा? व्यक्ति और समाज का क्या सम्बन्ध है? व्यक्ति समाज के लिये है या समाज व्यक्ति के लिये? हम जो भी इसका उत्तर दें, लेकिन जब तक ठीक—ठीक इसका उत्तर नहीं दिया जायेगा, समाजवाद कैसे बनेगा? कुछ हद तक तो हम सभी एकमत हो सकते हैं जैसे— जमींदारी उन्मूलन के सम्बन्ध में, पर समाजवाद में इतना ही नहीं है। जहां कम्युनिस्ट अधिनायकशाही हैं वहां व्यक्ति को सवाल करने का अधिकार नहीं है।⁶

यह एक ऐसा विषय है जिसका हमारे जीवन में केवल बौद्धिक दिलचस्पी का ही सम्बन्ध नहीं है। यहां इन बातों पर अवश्य विचार होना चाहिए। आज समाजवाद का रूप कम्युनिज्म हमारे सामने है। कम्युनिज्म में आत्मा की सत्ता नहीं मानते, यह एक विचार है। दूसरे विचार के लोग आत्मा की सत्ता मानते हैं, वे भी अपने को समाजवादी मानते हैं। दोनों मतों के अनुसार गर्वमेन्ट के, राज्य के, समाज के अलग-अलग अधिकार होते होंगे। इसमें क्या ठीक है बिना इसको जाने, बिना अपनी बुद्धि के अनुसार कुछ निश्चय किये, हमारे आर्थिक कार्यक्रम की गाड़ी नहीं चलेगी। हम दुनियां को बड़ी-बड़ी इमारतें नहीं पेश कर सकते, बहुत से अध्यापक नहीं पेश कर सकते, बहुत से छात्र नहीं पेश कर सकते, लेकिन हम विचारधारा पेश कर सकते हैं। यह एक बहुत बड़ी देन होगी देश के लिये, दुनियां के लिये।⁷

I UnHkz %

1. सुधेन्शु श्रीवास्तव, दैनिक पत्र, आज, 19 जनवरी 1969
2. डॉ० सम्पूर्णानन्द, समाजवाद, प्रकाशक काशीविद्यापीठ, बनारस, पृ० 159,
3. वही, पृ० 287
4. वही, पृ० 287
5. डॉ० सम्पूर्णानन्द, काशी विद्यापीठ, हीरक जयन्ती अभिनन्दन, प्रकाशक काशीविद्यापीठ, काशी, 1983, पृ० 290
6. वही, पृ० 290
7. वही, पृ० 292

सनातन धर्म के प्राणभूत पुराणों का धार्मिक महत्त्व अत्यधिक है और सनातन धर्म में ये वेदों के तुल्य ही समादृत हैं। जनमानस में इनकी प्रामाणिकता असंदिग्ध है। विष्णुपुराण में वैष्णव मत का समुचित परिपाक समुपलब्ध होता है। जिसका वर्ण्य-विषय विष्णु का आराध्य पक्ष है। इसमें यह दर्शाया गया है कि विष्णु के स्वरूप में ही विश्व का सृजन, संरक्षण तथा संहरण संनिहित है तथा उनकी भक्ति से ही मुक्ति संभव है।

भक्ति के द्वारा व्यक्ति भगवत्परायण होकर उसी में अपने चित्त को नियोजित कर अनायास ही समस्त कल्मषों से रहित हो जाता है। भक्ति सर्वसुलभ है, जो सभी मनुष्यों को समान भाव से मोक्ष का अधिकारी बना देती है। डॉ० गोपीनाथ कविराज के शब्दों में "भक्ति ह्लादिनी शक्ति की एक विशेष वृत्ति है।

ऋग्वैदिक देवता वरुण के स्तवन में आवेशपूर्ण आसक्ति एवं हार्दिक अनुराग से युक्त ऋचायें प्राप्त होती हैं। कठ एवं मुण्डक उपनिषदों में भक्ति को भगवत्कृपावश प्राप्त होने वाली बताया गया है। श्वेताश्वतर श्रुति में उस देव के शरण की कामना की गयी है जो ब्रह्मा की रचना करके उसे वेद प्रदान करता है तथा बुद्धि की रचना करके उसे वेद प्रदान करता है तथा बुद्धि का प्रकाशक है।¹ बृहदारण्यक यदि देवोपासना को महत्त्व देता है² तो कठोपनिषद् भी प्रवचन, प्रज्ञा और अध्ययन के प्रति उपेक्षा प्रकट करते हुए परमात्मा की अनुकम्पा को ही अधिक महत्त्व प्रदान करता है।³ श्रीमद्भागवतपुराण सर्वप्रथम भक्ति को परम पुरुषार्थ एवं साध्यरूप में उद्घोषित करता है।

विष्णु एक ऋग्वैदिक देवता हैं किन्तु ऋग्वेद में उनका स्थान इन्द्र की महत्ता से आच्छादित है और वह इन्द्र के सहायक और उपेन्द्र के रूप में चित्रित हैं जो इन्द्र की प्रेरणा से सोमपान करते हैं तथा असुरों के धनों का अपहरण करते हैं।⁴ उत्तर वैदिक काल में उनकी प्रतिष्ठा में वृद्धि होती प्रतीत होती है। क्योंकि शतपथ ब्राह्मण विष्णु को देवों में श्रेष्ठतम कहता है।⁵

विष्णुपुराण में विष्णु को 'सर्वेश' कहकर उनमें सभी जीवों की प्रतिष्ठा बतलायी गयी है। वे कालातीत हैं और उनका विनाश असम्भव है, वे ही सभी के आश्रय हैं।⁶ इसी पुराण में उल्लिखित है कि इन्द्र ने सौ यज्ञों के द्वारा विष्णु को परितुष्ट करके ही अमरेशत्व को प्राप्त किया⁷ एवं विष्णु की संतुष्टिपूर्वक ही बलि ने एक मन्वन्तर तक निर्विरोध इन्द्रत्व का उपभोग किया।⁸ इस प्रकार हम देखते हैं कि पौराणिक काल में विष्णु को प्रधान देवता का स्थान प्राप्त हो गया।

विष्णु की उपासना के सम्बन्ध में 'भक्ति' का प्रयोग 'मत्स्य' और 'विष्णुपुराण' में दो अति महत्त्वपूर्ण स्थलों पर हुआ है। मत्स्यपुराण में इसका उल्लेख विभूतिद्वादशी नामक व्रत के प्रसंग में हुआ है। कहा गया है कि केशव को संतुष्ट करने का एकमात्र उपाय 'भक्ति' है।⁹ विष्णुपुराण में बतलाया गया है कि राजा शतधनु भक्ति-मार्ग का अवलम्बन कर विष्णु का चिन्तन करते थे।¹⁰ जब ध्रुव को सर्वोत्तम स्थान प्राप्त करने की प्रबल जिज्ञासा हुई तब सप्तर्षियों द्वारा उसे विष्णु-भक्ति का मार्ग बताया गया। मरीचि ऋषि कहते हैं कि बिना गोविन्द की आराधना के मनुष्य को परमपद नहीं मिल सकता। अत्रि के अनुसार, "परम पुरुष जनार्दन परा प्रकृति इत्यादि से भी परे हैं वे जिससे संतुष्ट होते हैं उसी को परमपद मिलता

है। अंगिरा समस्त जगत् को अच्युत से ओत-प्रोत बताते हुए कहते हैं कि विष्णु की अराधना करने से अतिदुर्लभ पद 'मोक्ष' की भी प्राप्ति होती है क्योंकि विष्णु परब्रह्म, परधाम और परस्वरूप हैं। पुलह कहते हैं कि विष्णु यज्ञपति एवं जगत्पति है। उनकी अराधना करने से इन्द्र ने श्रेष्ठ 'ऐन्द्र' पद को प्राप्त किया अतएव उनकी अराधना अपेक्षित है। क्रतु के अनुसार विष्णु परमपुरुष, यज्ञस्वरूप तथा योगेश्वर हैं। उनकी अराधना करने से मन की कोई भी इच्छा पूर्ण हो सकती है फिर त्रैलोक्य के अन्तर्गत स्थान प्राप्ति का कहना ही क्या?¹¹ अन्यत्र कहा गया है कि भगवान् विष्णु अपने द्वेषियों द्वारा कीर्तित होने पर उन्हें फल प्रदान करते हैं फिर जो लोग उनकी भक्ति करते हैं उनको दुर्लभ फल देना तो उनका नियम ही है।¹²

विष्णुपुराण कहता है कि विष्णु की उपासना करने वाले मनुष्य को चाहिए कि वह पहले समस्त वाह्य विषयों से मन को निवृत्त करे तत्पश्चात् उसे जगत् के एकमात्र आधार विष्णु में स्थिर करे। इस प्रकार तन्मयीभूत होकर विष्णु का जप¹³ करना चाहिए। नृप शतधनु तन्मय-भाव से विष्णु की उपासना करते हुए चित्रित किये गये हैं।¹⁴ विष्णु विकार रहित हैं, नित्य हैं तथा उनका रूप सदैव एक सा रहता है। वे विश्व के अधिष्ठान हैं, सूक्ष्मतर से भी सूक्ष्म हैं तथा विश्व की उत्पत्ति, स्थिति और संहार से भी सूक्ष्म हैं तथा विश्व की उत्पत्ति है, स्थिति और संहार के मूल कारण हैं।¹⁵ उनका पारमार्थिक रूप अत्यन्त निर्मल हैं तथा वे ज्ञानमय हैं, पर से भी पर हैं, अन्तरात्मा में उनका निवास है। वे नाम, वर्ण, रूप और विशेषण इत्यादि से सर्वथा रहित हैं और उनमें जन्म, वृद्धि जरा, परिणाम, क्षय का सर्वथा अभाव है। उनके विषय में 'वे हैं' केवल इतना ही कहा जा सकता है।¹⁶ वे स्वयं को ही परिपालित करते हैं तथा स्वयं का ही उपसंहार करते हैं। ऐसे विष्णु सर्वश्रेष्ठ हैं, उपासना के योग्य हैं तथा भक्त को वर देने वाले हैं।¹⁷

विष्णुपुराण में उनके पर्वत और समुद्र दो आवासों का वर्णन मिलता है। वायुपुराण में भी विष्णु का प्रासाद निषद् पर्वत पर बताया गया है जिसको भ्रमण करते हुए पुरुरवा ने देखा था। पर सामान्यरूपेण समुद्र को ही विष्णु के आवास रूप में दिखाया गया है जहाँ वह लक्ष्मी के साथ निवास करते हैं। एक स्थल पर उल्लिखित है कि इन्द्रादि देवता उनका दर्शन करने के लिये क्षीरसागर के तट पर गये थे। देवों की स्तुति के पश्चात् जब विष्णु प्रकट हुए तो शंख, चक्र और गदा धारण किये हुए गरुड़ पर आरूढ़ थे। विष्णुपुराण के अनुसार उनकी आँखे विकसित कमल के समान हैं, वे पीताम्बर धारण करते हैं, उनके अलार, किरीट, केयूर, हार, कटक इत्यादि हैं, उनकी चारों भुजाओं में शंख, चक्र, गदा और पीताम्बर सुशोभित होते हैं।

पौराणिक विष्णु-भक्ति का सूक्ष्म स्वरूप औपनिषदिक वर्णन से बहुत साम्य रखता है। जैसे- विष्णुपुराण में नारायण को हृदयस्थ माना गया है।¹⁸ इसी प्रकार काठक संहिता में भी उपास्य देव की स्थिति आत्मा में बतायी गयी है।¹⁹ विष्णु-भक्ति की पराकाष्ठा अन्य ग्रंथों में भी व्यक्त की गयी है। महाभारत के शान्तिपर्व में उल्लिखित है कि श्रीकृष्ण को किया हुआ एक प्रणाम भी दश अश्वमेध यज्ञों के समान है।²⁰ हरिवंश पुराण के अनुसार सत्त्वगुण में स्थित होकर सदा ही हरि का ध्यान करना चाहिए।²¹

I UnHkz %

1. यो ब्रह्माणं विद्धाति पूर्वं, यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै। तमहं देवात्मबुद्धिप्रकाशं मुमुक्षैर्वै शरणमहं प्रपद्ये ॥ श्वेताश्वतर उपनिषद् 6/18नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो
2. अथ योऽन्यां देवतामुपास्ते। बृहदारण्यक उपनिषद् 1/4/10
3. नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन। कठोपनिषद् 2/23
4. मैकाडानल, वैदिक माइथालॉजी पृष्ठ 41, ऋग्वेद 1/11/61
5. तद्विष्णुः प्रथमः प्राप। स देवानां श्रेष्ठोऽभवत्समादाहुर्विष्णुः देवानां श्रेष्ठ इति।
शतपथ ब्राह्मण 14/1/1/5सर्वेश
6. सर्वभूतात्मन्सर्व सर्वाश्रच्युत, प्रसीद विष्णो विष्णु पुराण 1/9/57

7. इष्ट्वा यमिन्द्रो यज्ञानां शतेनामरराजताम्। विष्णुपुराण 5/17/7
8. यत्राम्बु विन्यस्य बलिर्मनोज्ञा .. मन्वन्तरं पूर्णमपेतशत्रुम्।। विष्णुपुराण 5/17/30
9. भक्त्या तुष्यति केशवः। मत्स्य पुराण 100/36
10. आराधयामास विभुं ... भक्तिततः ... नान्यमानसः। विष्णुपुराण 3/18/55-56
11. विष्णुपुराण 1/11/40-49
12. अयं हि भगवान् ... सम्यक्भाक्तमतामिति।। विष्णुपुराण 4/15/17
13. विष्णुपुराण 1/11/53-55
14. विष्णुपुराण 3/18/55
15. अविकाराय – नित्याय– विश्वस्य स्थितौ सर्गे तथा प्रभुम्। विष्णुपुराण 1/2/1-5
16. विष्णुपुराण 1/2/10-13
17. स एव सृज्यः स च सर्गकता। विष्णुपुराण 1/2/70
18. नारायणोऽयनं धाम्नां तस्याधारः स्वयं हृदि।। विष्णुपुराण 2/9/4
19. तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां शान्तिःशाश्वती। काठक संहिता 2/5/12
20. एकोऽपि कृष्णस्य कृतः प्रणामो दशाश्वमेधावभृथेन तुल्यः। महा10 शान्तिपर्व 47/91
21. हरिरेकः सदा ध्येयो भवः सत्त्वसंस्थितैः। हरिवंश पुराण 3/89/9

I Ur I kfgR; ea ykx/ke/ o I gt ekuo /ke/

MkK vo/ks k dekj JhokLro*

सन्त सर्वमान्य मानवधर्म या लोकधर्म के संस्थापक है। सन्तों का सारा जीवन और उनकी सारी साधना स्वानुभूतिपूर्वक है। वे इसके बल पर ही आदर्श मानव समाज की कल्पना विश्व स्तर पर करके पृथ्वी पर स्वर्ग उतारने चाहते हैं। सन्तों की यही आदर्श कल्पना एक संज्ञान योग है। सन्तों ने इन्हीं धर्मों की साधना पद्धति को अपने जीवन का अंग बनाया, जो सहज और सरल है। जिनका वाह्य एवं आन्तरिक जीवन में पारम्परिक विरोध नहीं है। इसलिए उनकी साधना में प्रतिदिन के जीवन के साथ चरम साधना का कोई विरोध नहीं है। वे अखिल सृष्टि के कण-कण में आत्म छवि देखते हैं—

“जामे हम सोई हम ही में,
नर मिले जल एक हुआ।”¹

इसके लिए सन्तों ने एक सुन्दर उपाय खोज लिया था, वह है सहज साधना या सहज मानव धर्म। सहज साधना में किसी प्रकार की खींच-तान नहीं है, और न सन्त कबीर, दादू, रज्जब आदि सन्तों ने कहा है कि संसार और गृहस्थ जीवन को छोड़कर साधना नहीं हो सकती। इसीलिए ये सभी सन्त गृहस्थ बने रहे। प्रायः सभी सन्त चरम लक्ष्य की उपलब्धि में गृहस्थ जीवन को बाधा न मानकर एक आवश्यक सोपान के रूप में स्वीकार करते हैं। सन्त रज्जव साहब ने संकेत किया है कि योग के भीतर ही एक तरह का भोग रहता है और भोग के भीतर एक तरह का योग रह सकता है। इसीलिए कभी-कभी कोई-कोई वैराग्य में डूब मरता है और कोई गृहस्थ जीवन में तर जाता है—

“एक जोग में थोड़ा है, एक भोग में जोग।

एक डूबहिं वैराग्य में, एक तिरहिं गृह भोग।”²

वैरविहीन, कामनारहित होकर केवल स्वामी से भेंट करना, विषयवासनाओं से दूर रहकर साधु-सन्तों के समीप रहना, यही जीवन मनुष्य मात्र के लिए ग्रहण करने योग्य है। इसीलिए सन्तों ने धर्म, मानवधर्म, निजधर्म या हितधर्म का नाम दिया ताकि सहज की प्राप्ति के लिए कठोर साधना और प्रपंच का मार्ग न अपनाना पड़े। सन्त कबीर का सहज भाव वास्तविक सहानुभूति से ओत-प्रोत है—

सहज-सहज सब कोई कड़े, सहज न चीन्हे कोई।

जिन सहजै विशया तजी, सहज कही जाय सोई।”³

यह सहज मार्ग मानव धर्म का सबसे सुखद और सुखकारी मार्ग है। जो साधक विषय वासना को त्यागकर सहजानुयायी होकर राम की शरण में चला जाता है, उसको मुक्ति मिल जाती है। यथा—

“कहत कबीर सुनहु रे प्राणी छाड़हु मन की भरमा।

केवल नाम जपहुं रे प्राणी, पाहु एक की शरणा।”⁴

I Ur thou dk vk/kkj , oay{; %

सन्तों का सारा जीवन सत्य और सहज कर्म के प्रयोग में बीतता था। उनके जीवन का प्रमुख लक्ष्य सहज योग के आनन्द से भीतर ही भीतर पूर्ण होकर परम आनन्द प्राप्त कर जीवन-मरण की आशंका, स्वर्ग-नरक की भावना एवं पाप-पुण्य के भेद से ऊपर उठना था। वे जीवन के प्रसार-विस्तार एवं उन्नति के अभिलाषी रहे। आत्म-सम्मान की भावना से वे अपने जीविकोपार्जन का भार समाज पर नहीं डालना

*प्राचार्य, रघुवीर महाविद्यालय, रघुवीर नगर, जौनपुर, उ०प्र०

चाहते थे। उन्हें अपने पसीने की गाढ़ी कमाई पर पूर्ण आस्था थी। इसीलिए सन्त घर के जंजालों में लगे रहकर उन्हीं में अपने को निर्लिप्त रखते थे। वे संसार के सामान्य कर्मों में लगे रहकर भी अपना प्रत्येक क्षण लोकतीत आनन्द में बिताते थे और रामुक्त जीवन की क्षुद्रताओं से निर्लिप्त रहकर निरन्तर सत्य के प्रयोगों में निरत रहते थे।

I lrykd/keġ dk Lo: i %

1- Lokukŕ %

सन्त कवि आध्यात्मिक जीवन को सफल बनाने के लिए अपना सर्वांगीण विकास करना परम आवश्यक समझते हैं। इसीलिए प्रत्येक स्थिति में अनुभूति, अभिव्यक्ति एवं आचरण जो मनसा, वाचा, कर्मणा के ही पर्याय हैं, में पूर्ण संगति बनाये रखना अपेक्षित मानते हैं। आध्यात्मिक जीवन के निर्माण में स्वानुभूत का विशेष महत्व है। आत्मस्वरूप का साक्षात्कार ही स्वानुभूति है। इसी कारण सन्तों की अन्तरात्मा की स्वच्छता में ही सत्य के सहज आलोक की झांकी मिल सकी है। अतः इस दर्पण को स्वच्छ रखना आवश्यक है—

“जो दरसन देख्या चाहिए तो दर्पण माजत रहिए।

जब दर्पण लागे काई तब दर्शन किया न जाई।”⁵

2- 'kŕ rk %

सन्तों ने सदाचारपूर्ण लौकिक जीवन व्यतीत करने की कोरी शिक्षा ही नहीं दी वरन् उसे स्वयं अपने जीवन में भी उतारा। इसीलिए सन्तों की सहजधर्म की आधारशिला हृदय की पवित्रता अथवा आन्तरिक शुद्धता पर आधारित है। जब तक हृदय शुद्ध, निष्कलुश एवं सब प्रकार की वासनाओं से मुक्त होकर सात्विक आचरणशील नहीं बन जाता तब—तक ईश्वरानुभूति की क्षमता उसमें नहीं आ सकती। वासनाओं से मलीन मनरूपी चुनरी को तन की कुँडी बनाकर ज्ञानरूपी ‘सऊदन’ से सदगुरु रूपी धोबी के द्वारा सुरति की शिला में धुलाना परमआवश्यक है, तभी उसमें ज्योति का पारावार फूट सकता है—

“गुरु धोबी विश कापड़ा, साबुन सिरजनहार।

सुरति—सिला पर धोंइए, निकसे ज्योति अपार।।”⁶

3- uŕd I nkpj .k %

सन्तों ने अपने सहज धर्म में नैतिक आचरण का पूरा स्थान दिया है, क्योंकि इनका सम्बन्ध विश्वधर्म या मानवधर्म से है। इसीलिए इसे हितधर्म भी कहा जाता है। सच्चा मानव धर्म या विश्वधर्म सदैव ही उन नैतिक आचरणों पर आधारित रहता है जिनसे मनुष्य की अवधारणा होती है। इन नैतिक आचरणों में कुछ विधि या क्रियात्मक रूप होते हैं और कुछ निषेध रूप। सन्तों ने दोनों स्वरूपों का निर्देश किया है। विधि रूप में पाये जाने वाले नैतिक आचरणों में स्थानान्तरण, सारग्रहिता, समदर्शिता, शील, क्षमा, दान, धीरज, संतोष, परोपकार, अहिंसा, उदारता, संसार से विरक्ति, नाम स्मरण, अनहद शब्द, पतिव्रता प्रेम, विश्वास, सत्संग दीनता, विचार, विवेक, गुरुदेव आरती, सेवाभाव आदि प्रमुख हैं। निषेध या ध्वंसात्मक आचरणों में चेतावनी, भेष—भूषा, कुसंग, मान, क्रोध, कपट, आशा, तृष्णा, मन, माया, कनक और कामिनी, निद्रा, स्वादिष्ट आहार, मांसाहार, देवपूजा, तीर्थ—व्रत, दर्शन आदि प्रमुख हैं। सन्तों ने सर्वत्र ही अपने धार्मिक विचारों में सदाचार के पालन और विशिष्ट वस्तुओं के परित्याग पर जोर दिया है। आचरण की सात्विकता एवं आन्तरिक शुचिता पर ही विचारों व धारणाओं की शुद्धता निर्भर है। इस प्रकार उनका सहज धर्म सच्ची नैतिकता की भूमि पर खड़ा हुआ है।

4- cŕ) oknh Lrj ij /kfed] I keftd , oa I kŕŕd eŕ; kŕ dh LFkki uk %

सन्तों का यह सहज धर्म स्वानुभूतिपूर्वक होने के साथ—साथ बुद्धिवादिता की कसौटी पर खरा उतरता है। सन्त अध्यात्म के क्षेत्र में किसी प्रकार के तर्क को प्रश्रय न देते हुए भी जीवन में प्राथमिकता के पूर्ण समर्थक थे। सन्तों की दृष्टि में चैतन्य की जागृति ही श्रेष्ठ आचरण की चरम सिद्धि है। उन्होंने मिथ्याचार, वाह्याचार, कर्मकाण्ड एवं पूजोपचारादि की अपेक्षा की दृष्टि से देखा, क्योंकि ये वस्तुएं सचेतन

ज्योति के जगाने में सक्षम थी। सन्तकालीन समाज की स्थिति अन्धकारयुक्त वाह्यचारों से ऊपर नहीं उठ सकी थी। स्नान-ध्यान, पूजा-पाठ, गण्डा-ताबीज, डाकिनी, शाकिनी, पूजन एवं टोने-टोटके तक ही उनकी धर्मभावना का प्रसार था। सन्त पलटू साहब के शब्दों में-

“घर में जिन्दा छोड़ के, मुरदा पूजन जाँय।
मुरदा पूजन जाँय, भीति को सिरदा नावें।
पान-फूल और खान, जाई-जाई के तुरन्त चढ़ावें।”⁷

I Ur ds ykd/ke/ o I gt ekuo /ke/ dh fo'ks'krk, j %

सन्तों का सहज, लोक व मानव धर्म सात्विक, सरल, सहज, भावात्मक और भौतिक है। इसकी कुल मूलभूत विशेषताएँ इस प्रकार हैं-

1. लोकधर्म व सहजमानव धर्म प्रवृत्तिमूलक है और युगचेतना के प्रति क्रियात्मक तथा निषेधात्मक रूप में जागरूक है।
2. सामाजिक स्तर पर इसमें उदात्त विचार उपलब्ध हैं।
3. यह धर्म किसी निश्चित परम्परा में आबद्ध नहीं है।
4. इस धर्म में विकासोन्मुखी प्रवृत्ति की अविरल धारा प्रवाहमान है।
5. सहज धर्म भक्ति मार्ग के दोषों तथा योग की कठोरतम भूमि से वंचित है।
6. इसमें हृदय का भाव तथा बुद्धिवाद का अद्भुत संगम है। इसी कारण यह विश्वधर्म या मानवधर्म कहलाने के योग्य है।
7. इस धर्म में निराशावादिता के स्थान पर आशा, विश्वास एवं पौरुष की भावना जागृत की गई है।
8. यह धर्म राष्ट्रीय सामाजिक एकता और समन्वयवाद का पोषक है।
9. इसमें निर्माणकारी प्रवृत्तियों का आधिक्य है।
10. इस धर्म में सभी धर्मों के प्रबल व्यवहारिक रूप तथा उसकी गुणवत्ता को उदारतापूर्वक स्वीकार किया है।
11. इसमें विश्वबन्धुत्व, मानवतावाद, प्रगतिशीलता, शाश्वतता तथा सजीवता जैसी महान परम्पराओं की पयस्विनी गतिमान है।
12. इस धर्म का लक्ष्य लोक-कल्याण है।

I UrHkz %

1. चौरसिया, डॉ. केशनी प्रसाद, मध्यकालीन हिन्दी सन्त विचार और साधना, पृ0 145
2. रज्जब साहब की वाणी, मायावधि अंग-4
3. विजयेन्द्र स्नातक, कबीर, पृ0 248
4. दास, श्यामसुन्दर, कबीर ग्रन्थावली, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
5. चौरसिया, डॉ. केशनी प्रसाद, मध्यकालीन हिन्दी, सन्त विचार और साधना, पृ0 149, 255
6. पाण्डेय, राम खेलावन, मध्यकालीन सन्त साहित्य, पृ0 206
7. पलटू साहब की वानी, भाग-1, वे0 वे प्रेस, इलाहाबाद, पृ0 74

वैश्वीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा विश्व व्यवस्था का एकीकरण हुआ है। आज सभी देश एक दूसरे की संस्कृति सभ्यता, प्रौद्योगिकी आदि का आदान-प्रदान कर रहे हैं इस प्रक्रिया के परिणामस्वरूप निश्चित रूप से जनजीवन की सामाजिक आर्थिक पक्षों पर प्रभाव पड़ा है कहीं यह सकारात्मक है तो कुछ जगहों पर इसके नकारात्मक प्रभाव भी दिखायी पड़ते हैं। वैश्वीकरण ने जहां एक ओर विश्व व्यवस्था को एकीकृत करने का काम किया है वहीं इसने समाज में असमानता भी पैदा कर दी है वैश्वीकरण ने पारम्परिक संस्कृति धर्म आदि पर प्रहार करने का काम भी किया है। प्रस्तुत शोध पत्र में वैश्वीकरण को विस्तार से बताया गया है तथा भारत में इसके आगमन से भारत में हुए विभिन्न प्रकार के परिवर्तनों का समालोचनात्मक वर्णन किया गया है।

वैश्वीकरण एक बहुलवादी प्रक्रिया है, अर्थात वैश्वीकरण प्रक्रियाओं का एक समुच्चय है, जिसका प्रभाव मानव जीवन से सम्बन्धित विभिन्न पक्षों पर देखा जा रहा है। वैश्वीकरण एक सामाजिक प्रक्रिया है जिसमें सामाजिक एवं सांस्कृतिक प्रबन्धों में भौगोलिक बन्धन ढीले हो जाते हैं, और जिसमें लोग इसके प्रति अधिकाधिक जाग्रत हो जाते हैं। इस प्रकार विश्व का एक ऐकिक समाज व्यवस्था के रूप में निर्माण वैश्वीकरण है। इस संदर्भ में महत्वपूर्ण बात यह कि विश्ववाद के द्वारा एक नवीन चेतना का प्रादुर्भाव हो रहा है। इसके अतिरिक्त अब वैश्विक स्वास्थ्य, वैश्विक व्यापार, वैश्विक पर्यावरण, वैश्विक विकास एवं वैश्विक संस्कृति आदि की बात की जा रही है, यह वैश्विक विचार ही वैश्वीकरण है। दूसरी विचारधारा से वैश्वीकरण वह प्रक्रिया है जिसका कारण पूँजीवाद का विस्तार और इसकी समृद्धि है। सामान्य शब्दों में, वैश्वीकरण का जनक पूँजीवाद है।

वैश्वीकरण की प्रक्रिया के फलस्वरूप बहुराष्ट्रीय निगम 1. उत्पादन की तकनीक, 2. वित्तीय पूँजी 3. बाजार पर अपना नियंत्रण रखते हैं। ये पहले स्थानीय संस्कृति का अध्ययन करते हैं और तब संस्कृति की आवश्यकतानुसार वस्तुओं का उत्पादन करते हैं। वैश्वीकरण ने एक प्रकार के नये आर्थिक और सांस्कृतिक साम्राज्यवाद को पैदा किया है, किन्तु वैश्वीकरण को निर्धन नहीं अपना सके हैं इन देशों का घरेलू उद्योग ठप हो गया है, विकासशील राष्ट्र अपने ही स्थानीय बाजार में संघर्षरत हैं। वैश्वीकरण की प्रक्रिया का भारत पर भी नकारात्मक प्रभाव स्पष्टरूप से दिखायी पड़ रहा है। बेरोजगारी एवं निर्धनता में अनवरत रूप से वृद्धि होती जा रही है। वैश्वीकरण विश्व के सिकुड़ने के साथ ही साथ सम्पूर्ण विश्व को एकीकृत करने की चेतना है। वैश्वीकरण की प्रक्रिया बहुलवादी है जिसमें अलग-अलग विभिन्न तत्व शामिल हैं। वैश्वीकरण में सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, संचार एवं तकनीकी, आर्थिक आदि विभिन्न तत्व शामिल हैं अतः इसे विभिन्न दृष्टियों से अलग-अलग परिभाषित किया जा सकता है।

1- l kelftd nf"Vdksk % वैश्वीकरण के आर्थिक पहलू की अपेक्षा इसका सामाजिक सांस्कृतिक दृष्टिकोण अधिक पेचीदा है। यह इसलिए क्योंकि इसके अन्तर्गत हम सम्पूर्ण मानव जीवन को शामिल करते हैं। वैश्वीकरण एक प्रकार से दुनिया भर के लोगों के सामाजिक सम्बन्धों का ताना बाना है। यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिसने विश्व के विभिन्न राष्ट्रों के बीच की भौगोलिक सीमा को नष्ट कर दिया है तथा भौतिक दूरी अब विशेष महत्व नहीं रखती है (मैलकॉम वाटर्स, 1995, जॉन आर्त शाल्ट,

1999)। सामाजिक दृष्टिकोण से वैश्वीकरण तुलनात्मक रूप से दूरी का कम होना एवं भौतिक सीमाओं का अन्त होना है (मैक्लूहान, 1964, ससकिया ससेन, 1991)।

2- I kldfrd nf"Vdks k % सांस्कृतिक दृष्टि से वैश्वीकरण का तात्पर्य विभिन्न संस्कृतियों का सीमापार आने जाने या संक्रमण से है। आधुनिक काल से पहले धर्म का वैश्वीकरण सबसे अधिक था जैसे बौद्ध, कन्फ्यूसियस, हिन्दू, ईसाई आदि। आधुनिक युग आने के साथ वैज्ञानिकता, तार्किकता, आदि ने धर्म के स्थान पर संस्कृति को अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर बढ़ावा दिया है। सांस्कृतिक वैश्वीकरण में हम रहन-सहन, भाषाशैली, शास्त्रीय संगीत एवं नृत्य, पहनावा, आभूषण, आदि को शामिल करते हैं। भारत में भी विदेशी संस्कृति का भारतीय संस्कृति पर स्पष्ट प्रभाव दिखायी देने लगा है। इसमें उपभोक्ता संस्कृति, मीडिया संस्कृति, तकनीकी संस्कृति आदि को भी शामिल किया जाता है। वैश्वीकरण का तात्पर्य साझा संस्कृति से है, वैश्वीय संस्कृति का तात्पर्य सर्वदेशीय संस्कृति से लिया जाता है तथा वैश्वीय संस्कृति का अर्थ सामान्तया पश्चिमी संस्कृति से है। वैश्वीकरण ने संस्कृतियों को मिश्रित करने का प्रयास किया है फिर भी ऐसे मिश्रण में पश्चिमी और अमेरिकी संस्कृतियों की प्रधानता दिखायी पड़ती है। ऐसी स्थिति में जब यह वैश्वीय संस्कृति स्थानीय संस्कृति के सम्पर्क में आती है, तब वैश्वीय संस्कृति को वैधता पाने के लिए स्थानीय संस्कृति से अनुकूलन करना पड़ता है। इस वैश्वीकरण का मुख्य मुद्दा वैश्वीय-स्थानीय संस्कृति के सम्बन्धों का है। वैश्वीकरण अपने बुनियाद में बहुलवादी है इसी कारण वैश्वीय संस्कृति भी बहुलवादी है। इसमें एक ओर जहाँ पिज्जा, एवं अग्रेंजी टाई है तो दूसरी ओर पकोड़े और साफा पगड़ी भी है। किन्तु कभी-कभी वैश्वीय संस्कृति इतनी प्रभुत्वशाली होती है कि वह स्थानीयता के लिए समस्याएं उत्पन्न कर देती है।

3- cgyoknh nf"Vdks k % विश्व के ज्यादातर समाजशास्त्री वैश्वीकरण को एक बहुलवादी प्रक्रिया मानते हैं क्योंकि इसमें एक ओर जहाँ विकास एवं पूँजीवाद है वहीं दूसरी ओर शोषण भी है। इसके साथ ही इसमें स्वास्थ्य, पर्यावरण, संचार तकनीक, सामाजिक सांस्कृतिक तथा ऐसे ही अन्य बहुत से तत्व शामिल हैं। बहुलवादी वैश्वीकरण से तात्पर्य है कि यह प्रक्रिया एकाकी न होकर विभिन्न प्रक्रियाओं का समन्वय है। यह वैश्विक राजनीति, वैश्विक समाज, वैश्विक संस्कृति, उदारीकरण, निजीकरण, संचार एवं तकनीकी, तथा विभिन्न आर्थिक क्रियाओं का समन्वय है (एल्ब्रो मार्टिन, 1990, राबर्ट स्पिक, 1995, अर्जुन अप्पादुराई, 1996, डा. आर एल. एफ. नयीफ रोधन, 2006)। इस परिप्रेक्ष्य में प्रवजन, पर्यावरण आदि को भी वैश्वीकरण में शामिल किया जाता है। बहुलवादिता के परिणामस्वरूप वैश्वीकरण एक ओर जहाँ विकास का मार्ग खोलता है वहीं दूसरी ओर यह विभिन्न समस्याओं को भी जन्म देता है।

4- I pkj , oa rduhdh nf"Vdks k % संचार एवं तकनीकी परिप्रेक्ष्य में वैश्वीकरण संचार सुविधाओं एवं तकनीकी ज्ञान का विस्तार है। संचार एवं तकनीकी ने विश्व को एक वैश्विक गाँव में बदल दिया है। संचार सुविधा एवं तकनीकी ने समय और दूरी को कम कर दिया है, इसी के फलस्वरूप स्थानीय और वैश्विक लोग एक कड़ी में जुड़ गये हैं (राबर्टसन, 1992, जगदीश भगवती, 2004)। संचार एवं तकनीकी के माध्यम से ही राष्ट्रीय अर्थतन्त्र, व्यापार, ज्ञान का आदान प्रदान आदि आसानी से अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर एकीकृत हो जाते हैं। तकनीकी तंत्र ने ही (रोजेनारु, 1990) भौगोलिक एवं सामाजिक दूरियों को घटा दिया है एवं इसके पीछे मोबाइल, जेट हवाई जहाज, कम्प्यूटर, और ढेर सारे आविष्कार हैं। इस दृष्टि से आज दुनिया में जो पारस्परिकता या अन्तरनिर्भरता है वह संचार सेवाओं एवं तकनीकी तंत्र का परिणाम है। यह वैश्विक गाँव उन्हीं लोगों या राज्यों के लिए उपयोगी है जिनके पास संचार साधन एवं तकनीक है।

5- vkffkd nf"Vdks k % इस परिप्रेक्ष्य में वैश्वीकरण का कारण आर्थिक पूँजीवादी (वेलस्टेन, 1983) व्यवस्था है, जिसने विश्व पूँजीवादी अर्थव्यवस्था का स्वरूप ग्रहण कर लिया है। वैश्वीकरण की प्रक्रिया पूँजीवाद का विस्तार एवं उसकी समृद्धि है। इस दृष्टि से अगर समय और स्थान का दूरीकरण हुआ है तो उसका कारण पूँजीवादी की विश्व अर्थव्यवस्था है। यह अपने फायदे हेतु (थामस लर्सन, 2001)

एक दूसरे को प्रभावित करने की प्रक्रिया है। वैश्वीकरण के मुख्य खिलाड़ी कुछ सौ बड़े निगम हैं (राबर्ट डब्ल्यू0 मैक्वेस्नी, 1998) जिन्होंने पिछले दशक में राष्ट्रीय सीमाओं के पार जाकर उत्पादन और विक्रय के संगठन को तेजी से बढ़ाया है।

08 ohdj .k , 0a Hkkj r %

भारत में वैश्वीकरण की शुरुआत 1991 ई. से मानी जाती है। 1980 के दशक में भारत की सरकार, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष से दो बार उधार लेने के बावजूद भारत की आर्थिक, सामाजिक व्यवस्था नहीं सुधार सकी। अतः भारतीय अर्थव्यवस्था को सुधारने के लिए ढाँचागत अनुकूलन की नीति अपनायी गयी। इस नीति को अपनाने का कारण अत्यधिक बाहरी कर्ज का संकट, कर्ज की राशि का उन्नतिशील कार्य में समुचित उपयोग की कमी, अल्पावधि कर्ज तथा उधारदाताओं की विश्वास में कमी आदि था, जिसके परिणामस्वरूप अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं से उधार प्राप्ति, विदेशी निवेश को बढ़ावा, अर्थव्यवस्था में सुधार एवं उन्नति हेतु भारत की तत्कालीन सरकार ने यह नीतिगत परिवर्तन अपनाया। ढाँचागत अनुकूलन का तात्पर्य है अर्थव्यवस्था को विकसित एवं स्थायी बनाने का प्रयास। यह ढाँचागत अनुकूलन ही वस्तुतः वैश्वीकरण का दावत था जिसके परिणामस्वरूप ही उदारीकरण, निजीकरण एवं संघीय बाजार व्यवस्था को बढ़ावा दिया गया। राज्यों में आयात निर्यात के नीतियों में परिवर्तन कर उन्हें सरल एवं सुगम बनाया गया, विदेशी निवेश एवं व्यापार को बढ़ावा दिया गया। इसके साथ ही साथ नयी व्यापार नीति, नयी औद्योगिकनीति, तथा बैंकिंग एवं वित्त हेतु नयी नीतियाँ आदि शामिल थी। इसके साथ ही साथ भारत ने कृषि व्यवस्था में सुधार, श्रम के बाजार में सुधार तथा बेहतर तरीके से सूक्ष्म स्तर पर आर्थिक व्यवस्था में सुधार की नीतियाँ अपनायी।

स्थायीकरण एवं ढाँचागत अनुकूलन से मुद्रास्फीति एवं विदेशी कर्ज चुकाने के साथ ही भारत में बेरोजगारी एवं निर्धनता भी बढ़ गयी। वैश्वीकरण एवं आर्थिक उदारीकरण ने स्थानीय उद्योगधन्धों एवं स्वदेशी उत्पादन को निम्न स्तरीय कर दिया गया। हमारा सूचना समाज एवं तकनीकी तंत्र अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में प्रतिस्पर्धा करने में असफल हो रहा है, फलस्वरूप भारत में दिन प्रतिदिन बेरोजगारी एवं निर्धनता में बढोत्तरी हो रही है। भारत में निर्धनों की संख्या 1987-88 में 7 करोड़, 1993-94 में 7.63 करोड़, से बढ़कर 2004-05 में 8 करोड़ हो गयी (योजना आयोग, 11 मार्च 1997 एवं 21 मार्च, 2007)। भारत में निर्धनता में वृद्धि के साथ साथ भारतीय शहरों में भी निर्धनता में वृद्धि होती जा रही है। शहरी निर्धनों में भी वे लोग जो न्यूनतम स्तर पर अपनी आधारभूत आवश्यकताओं की पूर्ति करने में असमर्थ हैं, मलिन बस्तियों में शामिल किये जाते हैं। इनकी संख्या में लगातार वृद्धि हो रही है, भारत में 1981 में 2.79 करोड़ मलिन बस्तियाँ थीं जो 2001 में बढ़कर 6.18 करोड़ हो गयी।

व्यवस्थित रूप से एवं नीतिगत परिवर्तनों के द्वारा किसी प्रक्रिया को अपने समाज एवं राष्ट्र के विकास एवं उन्नति के लिए अपनाया जाता है। भारत में भी वैश्वीकरण की प्रक्रिया को राष्ट्रीय उन्नति एवं विकास को ध्यान में रखकर ही अपनाया गया, किंतु वैश्वीकरण का भारत पर सकारात्मक प्रभावों की अपेक्षा नकारात्मक प्रभाव अधिक पड़ा है। वैश्वीकरण एक द्वन्द्वात्मक प्रक्रिया है। यह इसलिए कि इसके कारण जो परिवर्तन आता है, कभी एक समान नहीं होता। इसके परस्पर विरोधी अभिवृत्तियाँ होती हैं (एन्थनी गिड्डेन्स, 1990)। वैश्वीकरण की प्रक्रिया के फलस्वरूप भारतीय समाज भी प्रभावित हुआ है एवं इसके विभिन्न पक्षों में अनेक परिवर्तन आये हैं। वैश्वीकरण की प्रक्रिया के फलस्वरूप भारतीय औद्योगिक क्षेत्रों में परिवर्तन आया है। बड़ी-बड़ी कम्पनियों की स्थापना हो रही है, भारत में विदेशी निवेश की मात्रा में वृद्धि हो रही है किन्तु काम के बदले उन्हें वेतन बहुत कम दिया जा रहा है। ये कम्पनियाँ स्त्रियों की सुरक्षा की दृष्टि से भी निम्न स्तरीय है। वर्तमान वैश्विक युग में स्वास्थ्य को वैश्वीय आधार पर मापा जा रहा है, विकासशील राष्ट्र- भारत में, संरचनात्मक सुधार के कार्यक्रमों के आधार पर स्वास्थ्य सम्बन्धी व्यवस्था को सरकारी के साथ प्राइवेट भी कर दिया गया है, जिसका उद्देश्य वैश्विक स्वास्थ्य नीति निर्माताओं के अनुसार, उस देश के निवासियों को बेहतर स्वास्थ्य सुविधा उपलब्ध कराना है यद्यपि

ऐसा सदैव नहीं होता है। प्राइवेट संस्थाएं अपनी प्राथमिकता आम नागरिकों को न देकर, अपने आय एवं लाभ की ओर अपना ध्यान केन्द्रित करने लगती हैं (ई. वोल्लिला, 2005)। वैश्वीकरण ने राजनीति एवं राजनीतिक विचारधारा को भी प्रभावित किया है। भारतीय राजनीति भी इससे प्रभावित है उसके लगभग सभी निर्णय अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति एवं संस्थाओं को ध्यान में रखकर किये जाते हैं। सामान्य रूप से एक अन्तर्राष्ट्रीय सरकार है जो विभिन्न राज्यों की सरकारों की सरकार है। यह सरकार वैश्विक स्तर पर सभी नागरिकों के लिए सामाजिक, आर्थिक, मानवीय अधिकारों के प्रति जिम्मेदार है (स्टिपो फ्रांसिस्को)। किंतु इससे राजनीतिक अधिकार किसी एक राष्ट्र के पास संचित होने की संभावना बनी रहती है। भारत की संस्कृति भी वैश्वीकरण से प्रभावित है, एक तरफ जहाँ गरीब राज्यों को रोटी की समस्या है तो विकसित राज्यों में जैसे मुम्बई, दिल्ली में मैकडोनाल्ड का नया ट्रेंड दिखायी पड़ता है। भारत में आज अंग्रेजी बोलने वालों को अधिक आधुनिक समझा जाता है एवं इनकी संख्या में लगातार वृद्धि होती जा रही है किन्तु हम अपनी ही मातृभाषा की बलि देते जा रहे हैं। वैश्वीकरण से जहाँ विश्व संस्कृति का उदय हो रहा है वहीं भारतीय संस्कृति का अस्तित्व कम होता जा रहा है या भारतीय संस्कृति का अस्तित्व खतरे में है, पहचान की समस्या एक प्रमुख समस्या के रूप में उभर कर सामने आ रही है (योगेन्द्र सिंह, 2000)। वैश्वीकरण का आर्थिक प्रभाव भी भारत पर अब स्पष्ट रूप दिखायी पड़ने लगा है।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि व्यापार, निवेश और वित्त, वैश्वीकरण के बुनियादी आधार हैं। ऐसा नहीं है कि इन तीनों तत्वों का विकास समान रूप से भारत में हुआ है। कहीं व्यापार घटा है तो कहीं निवेश बढ़ा है (भादुड़ी एवं नैयर, 1996)। वैश्वीकरण से अधिक अधिक गरीब लोगों और अधिक से अधिक धनवान लोगों के बीच की खाई चौड़ी हो रही है (संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम)। वैश्वीकरण एवं आर्थिक उदारीकरण ने स्थानीय धंधों, कुटीर उद्योगों व स्वदेशी उत्पादन को बड़ी ठेस पहुँचायी है। हम अभी पूरी तरह से आधुनिक भी नहीं हो पाये थे कि उत्तर आधुनिक समाज का सूचना समाज आ गया। तकनीकी तंत्र का ज्ञान भी पिछड़ा हुआ है हम दुनिया के विकसित देशों के बाजार से प्रतियोगिता नहीं कर पा रहे हैं। हमारी वस्तुएं इस बाजार में प्रतिस्पर्धा करने में असमर्थ हैं। परिणामस्वरूप हमारे ही स्थानीय बाजार में हम अपना उत्पादन नहीं बेंच पा रहे हैं। हमारे स्थानीय कारखाने एक के बाद एक बन्द होने लगे हैं मन्दी जानलेवा हो गयी है, बेरोजगारी आसमान छू रही है (हर्स्ट ई. चार्ल्स)। भारतीय संदर्भ में आर्थिक वैश्वीकरण का अर्थ उदारीकरण, निजीकरण, व्यापार, निवेश, आयात और निर्यात से लिया जाता है, इस प्रक्रिया का प्रतिरोध तो हो रहा है लेकिन यह अभी राजनीतिक संगठनों के ढाँव पेंच से बाहर नहीं आया है। आर्थिक संगठनों ने भी इसका खुलकर विरोध नहीं किया है। वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने वैश्विक स्तर पर विभिन्न तरह से एक दूसरे को जोड़कर, उन्हें अन्तर्निर्भर बना दिया है। भारत भी विभिन्न तरीकों से इस प्रक्रिया के नकारात्मक प्रभावों से प्रभावित है जैसे— बौद्धिक छनन। बुद्धिजीवी लोग अक्सर मिलते ही विकसित या धनवान देशों की ओर पलायन कर जाते हैं (थायनेडियन न्यूज 26 जनवरी, 2009)। वैश्वीकरण ने बीमारियों को भी बढ़ावा दिया है, जिस तरह यह व्यापार, सामान, पूँजी एवं लोगों को भौगोलिक सीमा के पार करती है उसी तरह यह बीमारियों को भी भौगोलिक सीमा के पार भेजती है। वैश्वीकरण से पर्यावरण भी प्रभावित हो रहा है। वाल्ड वाच संस्था के अनुसार चीन एवं भारत की उभरती हुयी अर्थव्यवस्था वैश्विक वातावरण को आकार देने की प्रमुख शक्तियाँ हैं। चीन के अनुसार 2007 में कार्बन डाई आक्साइड का सर्वप्रमुख उत्सर्जक अमेरिका था किन्तु उसका दुष्प्रभाव विश्व के साथ-साथ भारत पर भी पड़ा है (चायना ओवरटेक्स यू.एस.एज वर्ल्ड्स बिगेस्ट सीओटू एमीटर, गार्जियन को. यू.के. जून 19, 2007)। वर्ल्ड रिपोर्ट 2006— विश्व की पारिस्थितिकीय क्षमता, चीन, इण्डिया, जापान, यूरोप, संयुक्त राज्य अमेरिका एवं विश्व के ऐसे ही अन्य राज्यों की महत्वाकांक्षा को संतुष्ट करने के लिए अपर्याप्त है (बूमिंग नेशंस थर्टीन अर्थ , बी.बी.सी. न्यूज, 12 जनवरी, 2006)। भारत वैश्वीकरण द्वारा उत्पन्न विभिन्न समस्याओं का सामना कर रहा है।

I UnHkz %

1. Appadurai, Arjun (1996) *Modernity At Large: The Cultural Dimensions of Globaliazation*. Minneapolis: University of Minnesota Press.
2. Bhagwati, Jagdish (2004) *In Defence of Globlization*. New Delhi: Oxford University Press.
3. Giddens, Anthony (1991) *Modernity and Self Identity, Self and Society in the Late Modern Age*. Cambridge, U.K.: Polity Press.
4. India, Urban Poverty Report, (2009). New Delhi: Oxford University Press.
5. Martin, Albrow (1990) 'Introduction' M. Albrow and E. King, (eds.) *Globalization, Knowledge and Society*. London: Sage.
6. Nayar, Baldev Raj (2007) *Globalization and Politics in India*. (eds.) New Delhi: Oxford University Press.
7. Nayyar, Deepak (2008) *Liberlization and Development*. New Delhi: Oxford University Press.
8. Pathak, Avijit (2006) *Modernity Globalization and Identity, Towards A Reflective Quest*. New Delhi: Oxford University Press.
9. Waters, Malcom (1998) *Globalization*. Routledge: London.

dkedkth efgykvka dk ^; ksu mRi hM-u* l s l j {k.k exyk id kn iVy*

विशाखा बनाम राजस्थान राज्यका मामला कामकाजी महिलाओं का यौन उत्पीड़न से सम्बन्धित एक महत्वपूर्ण वाद हैं। जिसमें कामकाजी महिलाओं के अनुच्छेद 14, 19 और 21 में प्रदत्त मूल अधिकारों को लागू करवाने के लिए विशाखा नाम की एक गैर सरकारी संस्था ने लोक हितवाद के माध्यम से न्यायालय में दाखिल किया था और न्यायालय से मांग किया था कि यौन उत्पीड़न रोकने के लिए कुछ ऐसे मार्गदर्शक निर्देश जारी करे, क्योंकि वर्तमान इसे रोकने में सफल नहीं हो पायी है जिसका तत्कालीन कारण राजस्थान राज्य में एक सामाजिक महिला कार्यकर्त्री भैवरी देवी के साथ सामूहिक बलात्कार की घटना थी।

उच्चतम न्यायालय की तीन सदस्यों वाल खण्डपीठ (जिसकी अध्यक्षता मुख्य न्यायाधीश जे0एस0 वर्मा कर रहे थे तथा अन्य दो न्यायमूर्ति सुजाता मनोहर एवं बी0एन0 किरण पाल) ने 'यौन उत्पीड़न' को परिभाषित करते हुए महत्वपूर्ण दिशा-निर्देश जारी किये। उच्चतम न्यायालय ने 'यौन उत्पीड़न' को परिभाषित करते हुए निम्न सम्प्रेक्षण जारी किया हैं।

यौन उत्पीड़न में प्रत्यक्ष या संकेत रूप में प्रदर्शित सारे अवांछित व्यवहार आते हैं जो –

- (क) शारीरिक सम्पर्क या संकेतो। (ख) मौन कार्य की याचना या अनुरोध।
- (ग) यौन सूचक टिप्पणियां। (घ) अश्लील साहित्य दिखाना।
- (ङ.) अन्य अवांछित, शारीरिक या गैर शाब्दिक यौन जनित व्यवहार के रूप में व्यक्त किये गये हो।

इनमें से कोई भी व्यवहार ऐसी परिस्थितियों में किये गये हो, जहाँ महिला चाहे वह सरकारी, सार्वजनिक या निजी उद्यम में वेतन, मानदेय या स्वेच्छा से काम कर रही हो, को यह डर हो सकता है कि, उसके काम के सन्दर्भ में ऐसे व्यवहार अपमानजनक तथा उसके स्वास्थ्य एवं सुरक्षा के लिए खतरा बन सकता हैं या महिला के लिए विश्वास करने के आधार विद्यमान है कि उसका अस्वीकार (यौन उत्पीड़न से) उसके काम बहाली साहिल प्रोन्नति को प्रभावित कर सकता हैं या कार्य स्थल पर एक शत्रुतापूर्ण वातावरण का निर्माण कर सकता हैं या यदि महिला उस अपेक्षा का पालन नहीं करती है तो उसे बुरे परिणाम भी भुगतने पड़ सकते हैं।

वस्तुतः उच्चतम न्यायालय का यह सम्प्रेक्षण यही दर्शित करता है कि आज कामकाजी महिलाओं को उनकी कार्यस्थल पर किन-किन रूपों में 'यौन प्रताड़ना' का शिकार होना पड़ता हैं। इस संदर्भ में उच्चतम न्यायालय ने इसे न केवल गम्भीर अपराध अपितु एक महिला की संवैधानिक अधिकारों का भी उल्लंघन माना। खण्डपीठ ने अपने निर्णय में स्पष्ट शब्दों में लिखा कि –

- (1) कामकाजी महिलाओं का यौन उत्पीड़न से संविधान के अनु0 14, 15 के तहत 'लैंगिक समानता' एवं अनु0 21 के अन्तर्गत जीवन की स्वतन्त्रता तथा अनु0 19 (1) (ट) के अन्तर्गत उनकी पेशा या व्यवसाय अथक वाणिज्य के अधिकार का अतिलम्बन तथा हनन होता है।
- (2) संविधान के भाग 4 में वर्णित निदेशक तत्वों के अनु0 42 के अन्तर्गत काम की दशाओं तथा मातृत्व अनुतोष के लिए न्यायोचित तथा मानवीय परिस्थितियाँ उपलब्ध कराना राज्य का दायित्व हैं।

इसके अतिरिक्त अनु0 51 (क) (ड) के तहत अन्य बातों के अतिरिक्त स्त्रियों की मर्यादा का सम्मान करना प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य है। कामकाजी महिलाओं की यौन उत्पीड़न से इन प्रावधानों का भी अतिलंघन होता है।

(3) महिलाओं के विरुद्ध प्रत्येक प्रकार के विभेद का प्रतिबन्धी अभिसमय 1979 तथा बीजिंग घोषणा यह उपबन्ध करती है कि प्रत्येक राज्य महिलाओं के प्रति विभेद को प्रतिबन्धित करेंगे तथा महिला सम्मान एवं गरिमा की रक्षा के लिए कदम उठायेगें। आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक अधिकार सम्बन्धी अन्तर्राष्ट्रीय अभिसमय के अनु0 7 में भी यह प्रावधान है कि महिलाओं को कार्य की उचित दशाओं को प्राप्त करने का अधिकार होगा। ये अन्तर्राष्ट्रीय प्रावधान संयुक्ततः यही संदेश देते हैं कि महिलाओं के काम करने के स्थान पर मौन उत्पीड़न से संरक्षण होना चाहिए। भारतीय संविधान के अन्तर्गत मूल अधिकारों से अन्तर्विरोध न रखने वाला कोई भी अन्तर्राष्ट्रीय अभिसमय समाहित है और उसे संवैधानिक अधिकारों को और अधिक व्यापक बनाने वाला समझा जाना चाहिए। संविधान के अनु0 51 क (ग) एवं सातवी अनुसूची की प्रवेशिका 14 सपठित अनु0 253 में अन्तर्राष्ट्रीय संधियों और अभिसमयों को लागू करने के लिए संसद की विधि निर्माण की शक्ति अन्तर्निहित है अतः कामकाजी महिलाओं के यौन उत्पीड़न के नियन्त्रण के संदर्भ में जब तक संसद स्पष्ट रूप से विधि निर्माण नहीं करती है तब तक इस निमित्त कार्यवालीय शक्ति का विकल्प उपलब्ध है। सरकार को यौन उत्पीड़न रोकने के लिए निम्नलिखित दिश-निर्देशों के तहत कार्यवाही किया जाना चाहिए।

यौन उत्पीड़न की घटनाओं की पुनरावृत्ति को रोकने के लिए न्यायालय ने निम्नलिखित निवारक कदमों को अपनाने का निर्देश दिया—

सार्वजनिक या निजी क्षेत्र के सभी नियोक्ताओं का कार्यस्थल के अधिकारियों के यौन उत्पीड़न रोकने की उचित व्यवस्था करनी होगी। इसका दायित्व निर्वाह में बिना किसी पूर्वाग्रह के निम्नलिखित कदम उठाया जाना चाहिए।

- (क) उपर्युक्त परिभाषा के अनुसार कार्यशील पर यौन उत्पीड़न रोकने के लिए उसे उचित तरीके से प्रकाशित एवं वितरित किया जाय।
- (ख) सरकारी और सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों को आपसी व्यवहार एवं अनुशासन से सम्बन्धित नियमों, अधिनियमों में यौन उत्पीड़न के रोकने के प्रावधानों को शामिल करना चाहिए तथा ऐसे अपराधियों को दण्डित करने की व्यवस्था होनी चाहिए।
- (ग) निजी क्षेत्र के नियोक्ताओं को औद्योगिक रोजगार (चालू आदेश) अधिनियम 1946 के तहत उपर्युक्त प्रावधानों को शामिल करना।
- (घ) कार्यस्थल पर महिलाओं को काम, छुट्टी, स्वास्थ्य तथा सफाई के सन्दर्भ में उचित कार्य स्थिति प्रदान की जानी चाहिए ताकि उन्हें यह न लगे कि महिला होने के कारण वे अलाभकर स्थिति में हैं।

उच्चतम न्यायालय ने निम्नलिखित दण्डात्मक प्रावधान का भी सुझाव दिया —

- (क) जहाँ ऐसे व्यवहार भारतीय दण्ड विधान या किसी अन्य विधि के सीमा में आते हो, नियोक्ता को नियमानुसार उचित प्राधिकार के पास शिकायत करने के साथ उचित कार्यवाही की पहल करनी चाहिए।
- (ख) विशेषतः यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि यौन उत्पीड़न की शिकार महिला या साथियों के साथ भेद-भाव न हो या उन्हें किसी प्रकार से प्रताड़ित न किया जाय।
- (ग) यौन उत्पीड़ित महिलाओं के समक्ष यह विकल्प होना चाहिए कि ऐसी स्थिति में वे स्वयं या उत्पीड़क का उक्त कार्यस्थल से स्थानान्तरण करवा सके।
- (घ) जहाँ ऐसे व्यवहार संबन्धी सेवा नियमों के तहत दुर्व्यवहार में आते हो, वहां नियोक्ता द्वारा नियमानुसार उचित अनुशासनात्मक कार्यवाही की जानी चाहिए।

- उच्चतम न्यायालय द्वारा यौन उत्पीड़न के निवारणार्थ निम्नलिखित दिशा-निर्देश भी दिये गये हैं।
- (क) हर संस्था में नियोक्ता को शिकायत सुनने की प्रणाली विकसित करनी चाहिए जो पीड़ित महिला की शिकायत का निवारण करे और यह सुनिश्चित करे कि ऐसे व्यवहार सेवा अधिनियमों का उल्लंघन है अथवा नहीं, ऐसी शिकायतों का निपटारा एक निश्चित समय सीमा के अन्दर कर दिया जाना चाहिए।
- (ख) उपर्युक्त शिकायत प्रणाली के तहत गोपनीयता की संरक्षा करते हुए यदि आवश्यक हो तो शिकायत समिति को एक विशेष परामर्शदाता या अन्य सहयोगी सेवाएं प्रदान की जा सकती हैं।
- (ग) शिकायत समिति का अध्यक्ष किसी महिला को ही बनाया जाना चाहिए तथा सदस्यों में कम से कम आधी महिलाएं होनी चाहिए।
- (घ) वरिष्ठों द्वारा अनावश्यक दबाव या असम्यक प्रभाव को रोकने के लिए इस समिति में ऐसे बाहरी सदस्यों को शामिल किया जा सकता है जो गैर सरकारी संस्था या अन्य कोई संगठन से जुड़ा न हो और यौन उत्पीड़न का जानकार हो।
- (ङ) शिकायत समिति को तत् सम्बन्धी सरकारी विभागों के सामने शिकायतों और उस पर उठाये गये कदमों की वार्षिक रिपोर्ट पेश करना आवश्यक होना चाहिए।
- (च) कर्मचारियों को इस बात की छूट होनी चाहिए कि वे कर्मचारियों की बैठक या अन्य उचित मंत्र पर यौन उत्पीड़न के मामले को उठा सके।
- (छ) महिला कर्मचारी के अधिकारों के प्रति जागरूकता विकसित की जानी चाहिए तथा उपर्युक्त तरीकों से दिशा-निर्देशों एवं सम्बन्धित अधिनियमों को जोर देकर प्रचारित किया जाना चाहिए।
- (ज) यदि यौन उत्पीड़न की घटना किसी बाहरी व्यक्ति के कार्यों या व्यवहारों द्वारा घटित होती है तो नियोक्ता या प्रभारी को उत्पीड़ित महिला की सहायता एवं निवारक कार्यों में सहायता के लिए सभी आवश्यक एवं समुचित कदम उठाया जाना चाहिए।

4. केन्द्र एवं राज्य सरकारों को यह सुनिश्चित करने का प्रयास करना चाहिये कि इस आदेश द्वारा जारी दिशा-निर्देश एवं अधिनियम निजी उद्यमों के नियोक्ताओं द्वारा भी अपनाया जाय। ये दिशा-निर्देश मानवाधिकार संरक्षण अधिनियम 1993 द्वारा प्रदत्त अधिकारों का उल्लंघन नहीं करेंगे।

तदनुसार यह आदेश दिया जाता है कि उपर्युक्त दिशा-निर्देश एवं प्रावधान सभी कार्यस्थलों पर कामकाजी महिलाओं के लैंगिक समानता के अधिकार की बहाली एवं संरक्षण के लिए कठोरता से लागू किये जाये, ये दिशा-निर्देश तब तक लागू माने जायेंगे जब तक इस दिशा में उपर्युक्त अधिनियम नहीं बन जाते हैं।

एपाइरल एक्सपोर्ट प्रमोशन काउन्सिल बनाम ए0के0 चोपड़ा का मामला पहला मामला है जिसमें उच्चतम न्यायालय द्वारा 'विशाखा' के मामले में विहित सिद्धान्तों को लागू किया गया और यौन शोषण के लिए दोषी पाये गये एक कम्पनी में नियुक्त उच्च अधिकारी को सेवा से निकाल दिया गया।

I UnHkz %

1. ए0आई0आर0 1997 एस0सी0सी0 3011
2. ए0आई0आर0 1999 एस0 सी0 625/(1999) 1 एस0सी0 सी0 759

^Loluokl nRre** ukVd o ml dh i kl fxdrk

i qhrk JhokLro*
MKW 'kkjnk fl g**

किसी भी नाटककार के कृति की सार्थकता इस बात में निहित होती है कि वह अपने पूर्ववर्ती रचनाकारों से कितना ग्रहण करता है तथा अपने कृति को नवीन रूप प्रदान करने हेतु उसमें कितना परिवर्तन करता है एवं कितने सार्थक तत्वों का समावेश करता है, यही है कृति की प्रासंगिकता। वर्तमान समय में शीघ्रता से बदलते हुए परिवेश में भी भास की सर्वश्रेष्ठ कृति "स्वप्नवासवदत्तम्" कहा तक मानव-जीवन के चरित्र निर्माण में सहायक है तथा मानव जीवन को एक सार्थक आधार प्रदान करती है, जिससे उसके व्यक्तित्व निर्माण में सहायता मिलती है, उसके चरित्र में किन गुणों का आविर्भाव होता है, यही प्रासंगिकता होती है।

इसके अन्तर्गत कला एवं जीवन से संबंधित वे सभी पक्ष निहित होते हैं जो व्यक्ति एवं समाज के लिए महत्वपूर्ण होते हैं। संस्कृत साहित्य के महान नाटककार भास की अनुपम कृति "स्वप्नवासदत्तम्" तो बहुत ही सर्वश्रेष्ठ है क्योंकि राजशेखर ने 'काव्यमीमांसा' में भास के नाटकों की अग्निपरीक्षा में 'स्वप्नवासदत्तम्' के न जलने का उल्लेख किया है—

भासनाटक चक्रेऽस्मिञ्छकैः क्षिप्ते परीक्षितुम्।

स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोभून्न पावकः।।¹

भास ने स्वप्नवासदत्तम् के लिए सम्राट उदयन की कथा को आधार बनाया है तथा इसमें अपनी मौलिकता का पुट भरकर अपनी उच्च कल्पना शक्ति का परिचय दिया है। भास ने अपनी नाटकीय कौशल और प्रतिभा का परिचय देते हुए मूलकथा में अनेक परिवर्तन कर दिया है।

भास ने उदयन सम्बन्धी कथा को आधार मानकर दो नाटकों का सृजन किया प्रथम — 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' द्वितीय— स्वप्नवासदत्तम्। ये दोनों ही बहुत उच्च कोटि के नाटक हैं जो बाद में हर्ष द्वारा अपनी 'रत्नावली' तथा 'प्रियदर्शिका' नाटिकाओं के आधार बनाये गये।

प्रतिज्ञायौगन्धरायण को 'स्वप्नवासदत्तम्' का पूर्ण भाग भी माना जा सकता है क्योंकि इस नाटक की पृष्ठभूमि में ही स्वप्नवासदत्तम् की कथावस्तु का विन्यास होता है। राजा उदयन राज्य में आने के बाद वासवदत्ता के प्रेम में इतना तन्मय हो जाता है कि उसका राज्य आरुणि छीन लेता है तथा उदयन को वासवदत्ता के साथ लावाणक ग्राम में रहना पड़ता है अमात्य यौगन्धरायण यहाँ भी एक योजना बनाकर वासवदत्ता और अपने जलने का मिथ्यावृत्त फैलाकर वासवदत्ता को छद्मवेश में मगध की राजकुमारी पद्मावती के पास न्यासरूप में रख देता है। कालान्तर में उदयन का पद्मावती से विवाह होता है और मगध की सेना वत्सराज को आरुणि से मुक्त करा लेती है, उदयन, पद्मावती के साथ (साथ में वासवदत्ता भी) वत्सदेश की राजधानी पहुँचते हैं। वही समस्त रहस्यों का अनावरण होता है। स्वप्न वाला दृश्य भी लोक कथा में प्रचलित नहीं है। इस प्रकार भास ने अपनी नवीन उद्भावना शक्ति के द्वारा प्रचलित लोक कथा को एक नया कलेवर प्रदान कर अपनी अनुठी कल्पना शक्ति का परिचय दिया है।

*शोध छात्रा, संस्कृत विभाग, श्री अग्रसेन महिला महाविद्यालय आजमगढ़, उ०प्र०

**पूर्व प्राचार्य, श्री अग्रसेन महिला महाविद्यालय, आजमगढ़, उ०प्र०

भास संस्कृत साहित्य के एक जाज्वल्यमान मणि है। सम्पूर्ण भारत में सुदूर दक्षिण से ध्रुव उत्तर तक तथा पूर्व से पश्चिम तक उनकी कीर्तिपताका फहरती थी। भारतीय मनीषियों के साथ-साथ पाश्चात्य आलोचकों ने भी भास की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है। पाश्चात्य आलोचक याकोबी का कथन है "भास के नाटकों की संख्या तथा उनके वर्ण्य विषय की अनेकरूपता से स्पष्ट द्योतित होता है कि उनकी प्रतिभा कितनी मौलिक तथा उनका मस्तिष्क कितना कर्मशील था।"²

। ढनकः :

1. स्वप्नवासदत्तम्, श्री गङ्गासागर राय, भूमिका, पृ० 14.
2. स्वप्नवासदत्तम्, श्री बद्रीनाथ मालवीय, भूमिका, पृ० 59.

Ukkjh , oa ekuokf/kdkj

Mkw l g thr fl g Hknkfj ; k*

आज से लगभग 200 वर्ष पूर्व रूसों ने शोषण एवं असमानता के बंधनों में जकड़ें हुए जनसाधारण की स्वाधीनता, आजादी व समानता का बेहतर जीवन प्राप्त करने की आकांक्षा को व्यक्त किया था। मानव अधिकारों की धारणा नवीन होते हुए भी पूर्णतः आधुनिक नहीं हैं। इसका मूल अतीत कालीन इतिहास में निहित हैं। इसका प्रारम्भ इंग्लैण्ड के 1628 के अधिकार याचना पत्र से माना जा सकता है। जब ब्रिटिश संसद ने राजा चार्ल्स प्रथम से एक प्रार्थना पत्र पर हस्ताक्षर करवाये जिसमें अन्य बातों के साथ साथ यह निहित था कि राजा अकारण किसी व्यक्ति को बन्दी नहीं बनायेगा। वास्तव में मानव अधिकार वह अधिकार है जो हमारी प्रकृति में अन्तर्निहित है तथा जिसके बिना हम मानवों की भांति जीवित नहीं रह सकते।

मानवाधिकार को कभी कभी मूल अधिकार अन्तर्निहित या जन्मजात अधिकार या नैसर्गिक अधिकार भी कहा जाता है अर्थात् मानव को प्रकृति द्वारा ही कुछ अधिकार प्राप्त हैं प्रत्येक नागरिक को इन्हें सुनिश्चित कराना सम्बन्धित सरकार का दायित्व है। मानवाधिकार इस सार्वभौमिक तथ्य की मानव प्रकृति की नायाब कृति है और इस समाज में हर व्यक्ति, हर जाति, हर वर्ग के लोगों को सम्मानजनक जीवन जीने का अधिकार होना चाहिए। विश्व की सभी सभ्यताओं, संस्कृतियों और जीवन आदर्शों का आधार ही मानवाधिकार हैं।

स्वतंत्रता, समानता, आत्मनिर्भरता एवं मातृत्व भाव विकसित करना इसका लक्ष्य है। मानवता की रक्षा के लिए वर्तमान युग में समानता, स्वतंत्रता एवं न्याय की मांग सभ्य समाज की उपज है। इसलिए मानवाधिकार के विचार को बढ़ावा देने के लिए कानून बनाना मानवता के गौरव की बात है। सभी के व्यक्तिगत अधिकारों की ग्राह्यता, चाहे वह किसी भी जाति, भाषा, लिंग, धर्म का हो नई बात नहीं है। सभी मानव जाति समानता तथा स्वतन्त्रता चाहते हैं, निरन्तर चलने वाले संघर्ष इसी का परिणाम है।

मानव कल्याण के विश्व दृष्टिकोण का विचार प्राचीन भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति में सर्वाधिक रहा है— वसुधैव कुटुम्बकम्, 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' जैसी मानवतावादी विचारधाराओं का प्रादुर्भाव सबसे पहले भारत में हुआ जो कि अन्तर्राष्ट्रीय शक्ति का केन्द्रीय आधार है। इन्हीं जीवन मूल्यों के संरक्षण एवं संवर्धन हेतु 24 अक्टूबर 1945 को संयुक्त राष्ट्र सभा द्वारा 10 दिसम्बर, 1948 को सार्वभौमिक घोषणापत्र को अपनाया गया। तभी से 10 दिसम्बर को मानवाधिकार दिवस घोषित किया गया।

मानवाधिकारों के इस सार्वभौमिक घोषणा पत्र में 30 अनुच्छेद हैं और इन अनुच्छेदों को मानवता का मैग्नाकार्टा कहा जाता है। महासभा ने इन मानवाधिकारों को चार रूपों में प्रस्तुत किया है—सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक। वैसे तो मानवाधिकार का सम्बन्ध मात्र मानवीय पक्ष की संवेदना, सहयोग एवं वैचारिक आदान-प्रदान तक ही सीमित नहीं होता है। यह किसी सभ्य एवं सुसंस्कृत समाज का व्याकरण होता है। जिसके मूल मानवगौरव और निष्पक्षता निहित होता है। संयुक्त राष्ट्र के मानवाधिकार सम्बन्धी विधेयक में समानता, शिक्षा, धर्म, सामाजिक सुरक्षा, मानवव्यवहार, न्याय आर्थिक एवं सांस्कृतिक उन्नति बच्चों एवं महिलाओं के अधिकार सम्मिलित हैं।

भारतीय संविधान का भाग-3 (अनुच्छेद 12 से 35) मूल अधिकारों की घोषणा करता है और भाग-4 (अनुच्छेद 36 से 51) राज्य के नीति निर्देशक तत्वों का उल्लेख करता है। 1993 में राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग की स्थापना की। इस आयोग का गठन राष्ट्रपति के एक अध्यादेश द्वारा 1993 में किया गया था जिसके अगले ही वर्ष 1994 में एक अधिनियम को पारित करके और भी ज्यादा सुदृढ़ व व्यवस्थित बना दिया गया। 1996 में कमेटी "ऑन द स्टेटस ऑफ वोमेन इन इण्डिया" का गठन किया गया जिसने अपनी रिपोर्ट में स्पष्ट किया था कि महिलाओं को पुरुषों के समकक्ष दर्जा देकर जिस क्रान्ति की आशा की गयी थी वह अब भी बहुत दूर है। 1990 में संसद द्वारा राष्ट्रीय महिला आयोग अधिनियम पारित कर राष्ट्रीय महिला आयोग का गठन किया। यह सभा मानवाधिकारों के संरक्षण एवं संवर्धन की दिशा में एक सराहनीय एवं प्रशंसनीय कदम है।

भारत में आधी जनसंख्या का प्रतिनिधित्व नारी समाज करता है। यदि पुरुषों की भांति नारी अपने व्यक्तित्व का समुचित विकास नहीं कर पाती हैं, स्वतन्त्रता, समानता की अनुभूति नहीं कर पाती है, भय भूख, शोषण एवं अज्ञानता से मुक्त नहीं हो पाती, तो सारी विकास योजनाएं आयोग एवं संविधानिक व्यवस्था मृगमरीचिका सिद्ध होगी। यही कारण है कि भारतीय संविधान में उन सारी परिस्थितियों को नकारने की पहल की गई, जिनके चलते नारी समाज को मानवाधिकारों से वंचित कर दिया गया था।

भारतीय संविधान सभी नागरिकों को (महिलाओं सहित) सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, न्याय प्रदान करता है। सरकार ने समय-समय पर सभी कमजोर वर्गों, जिसमें महिलाएं शामिल हैं, कि स्थिति में सुधार हेतु अनेकों कानून बनाए हैं।

इन सकारात्मक प्रयासों के बावजूद आज भी भय, शोषण, हिंसा, असमानता, महिलाओं के जीवन में इसी तरह पीछा नहीं छोड़ पा रहा है। जिस तरह मनुष्य के जीवन में मनुष्य की छाया।

विकास के साथ-साथ समाज की सामाजिक आर्थिक, राजनीतिक स्थिति में परिवर्तन हुआ किन्तु नारी समाज जस का तस रहा। यदि कहीं नारी समाज में परिवर्तन दिखाई पड़ा तो वह उसी मात्रा में रहा जितना नारी के परिवार के पुरुषों ने आवश्यक समझा या जिस हद तक उस परिवार के पुरुषों ने पहल की। पर्दा प्रथा, पुरुषोन्मुखी परम्पराओं एवं पुरुष प्रधान समाज के चलते परिवार के पुरुषों ने महिलाओं को न तो सार्वजनिक जीवन में भाग लेने की अनुमति दी और न ही सार्वजनिक कार्यक्रमों में सहभागिता निभाने का अवसर दिया। यही कारण है कि आजादी के बाद, अनेकों कानून बनने के बाद भी नारी समाज के जीवन में मानवाधिकारों का कोई महत्व नहीं मिला। उनकी कोई अपनी पहचान नहीं बन पायी। उनका सम्पूर्ण जीवन पति व परिवार में ही केन्द्रित था। पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से महिलाओं के लिए जो भी कल्याणकारी विकास योजनाएं कार्यान्वित की गईं उनसे महिलाओं में आत्मनिर्भरता विकसित नहीं हो सकी। उन्हें इन योजनाओं का लाभ तभी मिलता है जब उनके परिवार के पुरुष चाहते, उन्हें लाभ उतना ही मिला जितना परिवार के पुरुषों ने स्वीकारा। आज भी नारियों को भय, शोषण, परावलम्बन एवं पुरुषों के नियन्त्रण से मुक्ति नहीं मिली, जो मानवाधिकार के लिए आवश्यक हैं।

आज भी घरेलू हिंसा, दहेज के नाम पर महिलाओं की हत्या, सुरक्षाकर्मियों द्वारा महिला कैदियों के साथ अमानवीय व्यवहार और कन्या हत्या जैसी घटनाएं महिलाओं के मानवाधिकारों के हनन की कहानी रही हैं। यह मानवाधिकार का कितना बड़ा अपमान है कि शिक्षण संस्थाओं में महिलाएं भयपूर्ण वातावरण में शिक्षा प्राप्त करने को विवश की जा रही हैं। यदि हम ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि का अध्ययन करें तो पता चलता है कि वैदिक काल में स्त्रियां सभी दृष्टि से पुरुषों के समकक्ष थी, सम्मानपूर्वक अपने दायित्व का निर्वहन करती थी। बिना किसी भेदभाव के शिक्षा प्राप्त करती थी, विद्या प्रारम्भ एवं उपनयन संस्कार भी किये जाते थे, युद्ध में भाग, सेनापति की भूमिका भी निभाती थी। समान रूप से सम्पत्ति की स्वामी थी। उत्तरवैदिक काल में महिलाओं की स्वतन्त्रता व अधिकारों पर पुरुषों ने वैधानिक अंकुश

लगाकर उनकी मर्यादा एवं पद को लम्बे समय तक के लिए तुच्छ बना दिया। बाल विवाह की स्थापना की जिसके कारण महिलाएं हमेशा के लिए शिक्षा से वंचित कर दी गयी।

मुगलकाल में बाल विवाह, पर्दाप्रथा, वेश्यावृत्ति जैसी कुरीतियाँ समाज में व्यापक स्तर पर फैल गयी, इनका पालन करना नारियों की विवशता बन गई। ब्रिटिशकाल में भी नारियों को दोगम दर्जे का नागरिक समझा गया। वैसे तो पूरे भारतीय समाज में महिलाएं पितृसत्ता के बोझ के नीचे कराह रही थीं लेकिन दलित महिलाओं को पितृसत्ता के साथ-साथ स्वर्ण समाज की पितृसत्ता भी उनका शोषण व दमन करती थी। दलित महिलाओं को विवाह की पहली रात किसी नवाब, जमींदारों या पटेल के साथ गुजारने पर विवश किया जाता था इस प्रथा को नकारने पर दण्ड दिया जाता था।

कौशल्या वैसंती ने भी लिखा है कि पुरुष प्रधान समाज औरतों का खुलापन बर्दाशत नहीं कर सकता, पति तो इस ताक में रहता है कि पत्नी पर अपने पक्ष उजागर करने के लिए चरित्रहीनता का ठप्पा लगा दें। महिलाएं समाज व परिवार के भय से अपने अनुभव समाज के सामने उजागर करने से डरती हैं और जीवन भर घुटन में जीती हैं। मानवाधिकार विहीन नारी समाज को मानवाधिकार हनन से मुक्ति दिलाने हेतु जो संघर्ष प्रारम्भ हुआ उसके प्रथम प्रणेता राजाराम मोहनराय हैं जिसके चलते 1829 में लार्ड विलियम वेंटिक ने सती प्रथा को गैर कानूनी घोषित करते हुए कानून बनवा दिया। डा० मूत्तूलक्ष्मी रेड्डी ने मन्दिरों में प्रचलित देवदासी प्रथा का विरोध किया, रानी लक्ष्मीबाई ने महिलाओं के राज्य सम्बन्धी उत्तराधिकारी की लड़ाई अंग्रेजों के विरुद्ध लड़ी और शहीद हो गई। आर्य समाज, ब्रह्म समाज, रामकृष्ण मिशन, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, स्वामी विवेकानन्द, महादेव गोविन्दरानाडे आदि समाज सुधारकों ने महिलाओं की स्थिति को सुधारने के लिए काफी प्रयास किये। महात्मा गांधी के प्रयत्नों से ही महिलाओं ने न केवल स्वतंत्रता संग्राम में भाग लिया वरन् आजाद भारत में संविधान सभा में 14 महिलाओं को अनुमोदित करते हुए सर्वोच्च न्यायालय ने महिलाओं की गरिमा व प्रतिष्ठा को अक्षुण्ण रखने का प्रयास किया।

संविधान के 73वें और 74वें संशोधन द्वारा 1993 में महिलाओं को घर से बाहर निकालकर राजनीतिक व्यवस्था में सहभागिता निभाने हेतु पंचायती राज अधिनियम पारित किया गया। एक प्रजातान्त्रिक क्रान्ति की शुरुआत की गयी। पंचायत में चुनकर आने वाली महिलाएं परिवर्तन और विकास की इबारत लिख रही हैं कई इलाकों में उन्होंने साबित कर दिया है कि वे मर्दों से बेहतर प्रतिनिधि हैं। उन्होंने सदियों से जकड़ी जंजीरों को तोड़ा है। हरियाणा में एक पंचायत ऐसा भी है जिसके सभी पदों पर महिलाएं विराजमान हैं, फिरोजपुर झिरका की नीमखेड़ा पंचायत इस उपलब्धि के कारण चर्चा का विषय बन गई हैं।

अन्ध प्रदेश में कुर्नुल जिले में ग्राम पंचायत कालवा मे फातिमाबी को सर्वश्रेष्ठ सरपंच का संयुक्त राष्ट्र यू०एन०डी०पी० रेस अगेनस्ट पावर्टी पुरस्कार प्राप्त हुआ।

इन बहुआयामी प्रयासों के बाद भी महिलाएं शोषण, अन्याय, भय असमानता से मुक्त नहीं हो पा रही हैं। इसका प्रमुख कारण महिलाओं पर परिवार के पुरुषों का नियन्त्रण और शासन। लेकिन धीरे धीरे वे अत्याचारी, अन्यायी पुरुषों का मुकाबला कर रही हैं। सदियों से जकड़ी हुई दासता की जंजीरों को तोड़ रही हैं। लेकिन पूरी तरह से समानता व अधिकार प्राप्त करने के लिए अभी काफी प्रयास करने पड़ेगे। जब तक महिलाएं अपराध शोषण, अत्याचार, भय के विरुद्ध स्वयं को आगे आकर नहीं छोड़ेंगे तब तक नारी मानवाधिकारों की सुरक्षा सुनिश्चित नहीं हो पायेगी। अरुणाराय का कहना है कि अन्याय के खिलाफ होने वाली ग्रामीण औरत का जीवन ही असली बदलाव लायेगा।

I UnHkz %

1. ट्रान्सवेल लैन्गमीड, इंग्लिश कांस्टीट्यूशनल हिस्ट्री, पृ० 145
2. कृष्णा अय्यर (1992) जस्टिस एट कासरोड, न्यू देहली, दीप एण्ड दीप पब्लिकेशन, पृ० 22
3. उपेन्द्र बख्शी, (1978) "हूमन राइट" एकाउन्ट एबिलिटी एण्ड डेवलपमेन्ट इण्डियन जरनल ऑफ इन्टरनेशनल लॉ, पृ० 279, 283

4. प्रतियोगिता दर्पण, मार्च 2008
5. मानचन्द खण्डेला, महिला सशक्तिकरण : सिद्धान्त एवं व्यवहार, जयपुर 2008, पृ0 43, 44
6. वही, पृ0 52-53
7. जयशंकर मिश्र, प्राचीन भारत का इतिहास, बिहारी हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पृ0 414
8. अथर्ववेद 14/1/20, 1/27/5, 20/126/10
9. रामधारी सिंह, संस्कृति के चार अध्याय, पृ0 52
10. जयशंकर मिश्र, उपरोक्त पृ0 411-446
11. मोहनदास नौमिशराय, दलित महिलाएं, संपादक अभयकुमार दुबे, पृ0 232-33
12. कौशल्या वैसंत्री, दोहरा अभिशाप, दिल्ली, 1999, पृ0 7
13. जुगुल किशोर मिश्र, इम्पावरमेंट ऑफ वोमेन इन इण्डिया, द इण्डियन जनरल ऑफ पॉलिटिकल साइंस
14. विभा देवसरे, भारतीय महिला : स्वातंत्र्योत्तर छवि की पहचान आजकर, अगस्त 2007, पृ0 23
15. कुरुक्षेत्र, अगस्त 2007, पृ0 17
16. वही,
17. आजकल, अगस्त 2007, पृ0 27

I kekftd dj hfr; ka ds mUewyU ea I kekftd vf/kfu; eka ds Hkfedk dk eif; kadu

rstiky fl g*

किसी भी समाज के कल्याण एवं सामाजिक पुर्ननिर्माण के लिये वहां पूरे समाज कल्याण की आवश्यकता होती है। समाज कल्याण के लिये सामाजिक कल्याण एवं सामाजिक सुधार के साथ ही साथ, सामाजिक कानून की आवश्यकता होगी, क्योंकि सामाजिक सुधार, समाज कल्याण के साथ ही साथ सामाजिक पुर्ननिर्माण के लक्ष्य को दर्शाती है, तो उनकी पुष्टि में, सामाजिक कानून, उनकी सामाजिक, स्वीकृति और समाज के नागरिकों के द्वारा, उनको पालन के लिए जोर डालते हैं:—

होम्स ने लिखा है, कि, “आज का विधान बीते हुए कल की, सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति करती है,, समाज में हमेशा से ऐसे सामाजिक सुधार एवं कल्याण की आवश्यकता प्रारम्भ से महसूस हो गई, जिससे समाज को एक सूत्र में बांधा जाये।

भारतीय समाज एक परम्परागत समाज है। जहाँ पर आरम्भ से लेकर, वर्तमान समय में तमाम बुराईयां, संकीर्णता व्याप्त है— जिसके कारण भारत में महिलाओं को निम्न स्थित, संयुक्त परिवार का विघटन, बाल विवाह, बहु-विवाह, दहेज प्रथा, क्रय विवाह, जाति-प्रथा, अष्यपृष्यता किशोर अपराध साम्प्रदायिकता, वेश्यावृत्ति, जैसी अनेक सामाजिक समस्यायें व्याप्त हैं जिसके कारण भारतीय समाज को विकास एवं प्रगति में बाधा उत्पन्न होती है, लेकिन स्वतन्त्रतापूर्वक यह संकल्प लिया गया कि इन समस्याओं को, समाज से दूर करने के लिये सामाजिक कानून एवं सामाजिक कल्याण की आवश्यकता होगी। अब सवाल यह सामने आता है कि समाज में, सामाजिक अधिनियम बनाने का क्या औचित्य है?

क्योंकि हमारा समाज आरम्भ में सरल समाज का एक रूप था लेकिन समय परिवर्तन के कारण समाज में परिवर्तन हुआ जिससे वही समाज जटिल एवं कठोर बनता चला गया। इसको ध्यान में रखते हुये सरकार ने समय-समय पर नागरिकों की सुरक्षा के लिये विभिन्न प्रकार के अधिनियम बनाकर रक्षा की जा रही है। जिसमें से कुछ अधिनियम निम्न हैं।

अनेक सामाजिक अधिनियमों की विवेचना से यह ज्ञात होता है कि सामाजिक अधिनियम समाज कल्याण एवं सामाजिक समस्याओं का समाधान करता है। यह अधिनियम प्रारम्भ काल से वर्तमान युग तक सामाजिक अधिनियम अपने नियम के साथ चलते हुये समाज की समस्याओं को हल करने का एक प्रमुख साधन रहे हैं। जिससे समाज आवश्यकताओं को पूरा किया जाता रहा है एवं समाज को विघटन से बचाता रहा है। लेकिन वर्तमान समाज में बढ़ रही गतिशीलता एवं औद्योगिक क्रान्ति के कारण, तीव्रगति से समाज में परिवर्तन हो रहे हैं। इन नवीन परिवर्तनों के कारण नई-नई परिस्थितियां जन्म ले रही हैं। इन्ही समस्याओं को रोकने के लिये और समाज में सामंजस्य के साथ अनुकूलन बनाये रखने के लिये सामाजिक सन्नियम की शुरुआत हुआ।

अतः इन सब सामाजिक अधिनियमों के द्वारा भारतीय समाज में व्याप्त कुरीतियों को कम किया गया चाहे वह महिलाओं कि स्थिति हो या अश्वपृष्यता या दहेज या बाल विवाह या विधवा पुर्नविवाह को कम किया गया। जिसके कारण तमाम दशाओं में महिलाओं को काफी हद तक एक सम्मानजनक स्थिति

*प्रवक्ता, अर्थशास्त्र विभाग, डॉ० के०एन० मोदी साइन्स एण्ड कॉमर्स कॉलेज, मोदीनगर, गाजियाबाद, उ०प्र०

प्राप्त हुआ। यह सब सामाजिक विधान की देन है या प्रतिफल है। सामाजिक अधिनियम के बनने के कारण समाज में परिवर्तन हुआ है। इनमें सबसे ज्यादा लाभ स्त्रियों को हुआ है। जिससे आज महिलायें एक सम्मानजनक के साथ ही साथ हर क्षेत्र में अपने अधिकारों का उपयोग कर रही हैं एवं अपने जीवन को जी रही हैं, आज उनकी पहचान समाज के हर क्षेत्र शिक्षा, खेल, विज्ञान, प्रकाशन, मीडिया, व्यापार, प्रबन्धन, प्रशासन, राजनीति के साथ ही साथ चिकित्सा में एक पृथक पहचान बनाने में सफल हुयी है। आज महिलाओं की प्रस्थिति में परिवर्तन के साथ ही साथ समाज में कमजोर दुर्बलवर्गों की दशा में परिवर्तन प्रारम्भ हुये हैं। अतः हम कह सकते हैं कि किसी भी समाज में कल्याण एवं सामाजिक परिवर्तन के साधन के रूप में सामाजिक अधिनियम की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

ew; kdu %सामाजिक अधिनियम एवं सामाजिक कल्याण के द्वारा ही सामाजिक परिवर्तन लाने का एक महत्वपूर्ण साधन है।

आज समाज का हर मानव चाहे वह स्त्री हो या पुरुष, राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, धार्मिक दृष्टि से पूर्णतः स्वतंत्र हैं। यह सच है कि सामाजिक अधिनियम समाज में परिवर्तन लाते हैं, लेकिन हम देखते हैं कि इन अधिनियमों का उतना अधिक प्रभाव नहीं पड़ा जितनी की समाज ने इनसे आशा या अपेक्षा की थी, ऐसा मानना है कि इनका प्रभाव शहरी क्षेत्रों में ही अधिक देखने को मिलता है, ग्रामीण क्षेत्रों में कम।

इसके साथ ही साथ यह देखने को मिल रहा है कि आये दिन समाज में व्यभिचारिता में विकास हो रहा है जिसके कारण इन अधिनियमों की अपनी एक सीमा है। ऐसा मेरा मानना है कि सामाजिक अधिनियम तक कल्याण एवं परिवर्तन नहीं हो सकता जब तक कि इनमें सामाजिक चेतना न हो जिसका परिणाम महिलाओं एवं समाज में, पिछड़े वर्गों अर्थात् अनुसूचित जाति/जनजाति के लिये स्वतन्त्र भारत में तमाम संवैधानिक प्रावधानों एवं सामाजिक अधिनियमों की मौजूदगी के बावजूद इनकी दशा में व्यापक परिवर्तन परिलक्षित नहीं हो सके हैं। इनका ताजा उदाहरण— राजस्थान में देवगला सतीकांड, म0प्र0 और उ0प्र0 के बांदा जिले में ही रहे सती कांड प्रथा, निषेध अधिनियम पर प्रश्न चिन्ह लगाते हैं। इसी तरह मासूम बच्चियों को देह व्यापार हेतु बेंचना, दहेज के लिये महिलाओं को प्रताड़ित करना तथा उ0प्र0 एवं बिहार में, जातीय संघर्ष, जनजातीय उत्पीड़न की घटनाएँ इस बात को स्पष्ट करती हैं कि भारत में सामाजिक अधिनियमों, की उपस्थिति एक मूक दर्शक की तरह है।

अतः हमें राज्य सरकारों को इन सब कानूनों को पुनः संशोधन करके इसको और अधिक कठोर बनाने के लिये प्रयास किया जाना चाहिए ताकि समाज विघटन को रोककर एक संगठित समाज की कार्यविधि को विकास एवं गतिमान बनाया जा सके और हर थाना एवं चौकी से लेकर यह आदेशित किया जाये कि इनका कैसे अनुपालन कराया जाये ताकि भारतीय समाज को एक मजबूत आधार प्रदान किया जाये।

I UnHkz %

1. डा0 अमरनाथ, नारी मुक्ति का संघर्ष, गोरखपुर, 1991
2. कस्तवार, रेखा, स्त्री चिन्तन की चुनौतियाँ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009
3. वैरागी, डॉ0 विनोद नारायण दास, मानवाधिकार सिद्धान्त एवं व्यवहार, पराग प्रकाशन, कानपुर
4. Mukharjee, Dr. R.N., Social Problem, 1964
5. अग्रवाल, डा0 गोपाल कृष्ण, भारत में समाज कल्याण एवं सामाजिक अधिनियम, साहित्य भवन, आगरा, 2007
6. गुप्ता, रघुराज, सामाजिक समस्याएँ एवं सामाजिक कल्याण

jk"Vh; rk ds mRd"kl ea i =&i f=dkvka ds ; kx nku dk , frgkfl d v/ ; ; u

¼20oha l nh ds i Fke nks n'kdka ds fo' k'sk l UnHkz ea½

vrgy xlrk*

19वीं शताब्दी के अंतिम वर्षों में अंग्रेजी शासकों के विरुद्ध भारतीयों के असंतोष की जो भावना तीव्र होती जा रही थी । भारतीय राष्ट्रीय जागरण में तत्कालीन पत्रकारिता ने राष्ट्रीय जागरण के स्पंदन को न केवल स्वर ही दिया अपितु उसे उचित गति एवं दिशा प्रदान करने का भी प्रयास किया । 20वीं शताब्दी के प्रारंभ में राष्ट्रीय जागरण से प्रभावित होकर हिन्दी तथा अन्य दूसरी भारतीय भाषाओं में अनेक दैनिक, साप्ताहिक, पाक्षिक और मासिक पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित होने लगी । इस काल के प्रमुख हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं में सरस्वती, हिन्दी प्रदीप, भारत मित्र, आनन्द कादम्बनी, भारत जीवन, हितवार्ता, भारतेन्दु, नृसिंह, अभ्युदय, इन्दु, चाँद, प्रताप, मर्यादा, प्रभा नवनीत, ज्ञान शक्ति, विश्वामित्र प्रमुख थीं ।

इन पत्र-पत्रिकाओं में अनेक विषयों पर सम्पादकीय लेख लिखे जाते थे जिनमें लम्बे-लम्बे तर्कपूर्ण विवाद हुआ करते थे और उनसे ठोस निष्कर्ष निकाले जाते थे । इस प्रकार के कार्यों का मुख्य उद्देश्य जनसामान्य में राजनीतिक चेतना जागृत करना होता था । इस युग के अधिकांश प्रकाशक, संपादक एवं स्वयं राष्ट्रवादी भी थे, जिनका वास्तविक लक्ष्य देश को पराधीनता से मुक्त दिलाना था । दैनिक समाचार पत्रों के अतिरिक्त साप्ताहिक, पाक्षिक और मासिक पत्र-पत्रिकाएँ समाज सुधार, सांस्कृतिक चेतना एवं राष्ट्रीय एकीकरण की भावना से सराबोर होती थी । इनमें भारतीयों की दुर्दशा, व्यापार एवं वाणिज्य की दशा, अकाल, हिन्दी को राष्ट्रभाषा का दर्जा दिलाने, आदि विषयों को ध्यान में रखकर लेख, कहानियाँ, कविताएँ, नाटक और सम्पादकीय लिखे जाते थे ।

इस युग की पत्रकारिता का मूलस्वर साहित्यिक होने के साथ-साथ राष्ट्रीयता के उन्नयन की दृष्टि से ब्रिटिश सरकार के प्रति प्रहारात्मक और राष्ट्रभक्ति से परिपूर्ण होता था । इस युग के पत्रकारों ने जो कि मूलरूप से साहित्यकार भी थे । उन्होंने भारतीयों के आत्मविश्वास में वृद्धि के लिए पत्र-पत्रिकाओं में समय-समय पर भारत के प्राचीन गौरव पर अनेक लेख प्रकाशित किए । जनवरी 1909 की सरस्वती पत्रिका में "भारत का वाणिज्य" नामक लेख में बताया कि 'किसी समय भारत धन-धान्य से ऐसा पूर्ण था कि सारे संसार की आँखे इस पर गड़ी रहती थीं । एशिया तथा यूरोपियन साहित्यकारों ने यहाँ के अपार धन-वैभव का वर्णन किया है । सुप्रसिद्ध अंग्रेज कवि मिल्टन ने अपने विख्यात काव्य "पैराडाइज लौस्ट" के दूसरे सर्ग की दूसरी पंक्ति में यहाँ के धन और यश का गान किया है । अरबी में रचित संसार प्रचलित पुस्तक "अलिफ-लैला" में भारत के अनन्त धन की चर्चा है ।

सरस्वती एवं इन्दु जैसी पत्रिकाओं ने भारत के प्राचीन गौरवमय अतीत को स्पष्ट करते हुए सांकेतिक ढंग से यह स्पष्ट करने का प्रयास किया जाता था कि आज की तुलना में प्राचीनकाल की शासन व्यवस्था राज्य तथा जनकल्याणकारी थी । इसकी झलक हमें महावीर प्रसाद द्विवेदी के "प्राचीन भारत की झलक" गोविन्दरामतीर्थ के "भारतीय पुरातन राजनीति" शिवदास गुप्ता के "प्राचीन शासन पद्धति और राजा" तथा गंगाशंकर मिश्र के "सम्राट अशोक का राज्य शासन" में स्पष्ट रूप से दिखाई देती है ।

परशुराम मेहरोत्रा के "इतिहास का महत्व" श्री सम्पूर्णानन्द के "सच्चे ऐतिहासिक ज्ञान की आवश्यकता" आदि लेखों में इतिहास दर्शन को स्पष्ट करते हुए भारतीय गरिमा का वर्णन किया गया वहीं दूसरी ओर ऐसे अनेक लेख लिखे गए जिनका उद्देश्य इतिहास की उपयोगिता दर्शाना था। इस तरह के इन प्रयासों में महावीर प्रसाद द्विवेदी की बड़ी रचनात्मक भूमिका रही। वे जहाँ एक ओर ऐसे विषय पर लेख लिखने के लिए अपने समकालीन लेखकों को प्रेरणा देते रहते थे और सरस्वती में उनकी रचनाएँ छापते थे, तो वहीं दूसरी ओर प्रकारांतर से इंदु और मर्यादा जैसी अन्य पत्रिकाओं में इसी तरह के लेख लिखे जाएँ, यह प्रयास भी करते रहते थे। जब कभी उन्हें यह आभास होता कि राष्ट्रीय संवेदना के निर्माण कार्य सही ढंग से नहीं चल रहा है तो वे स्वयं इस विषय पर लेख लिख दिया करते थे।

स्वतंत्रता आंदोलन के समानान्तर ही यह भी महसूस किया जाने लगा था कि विदेशी शासन की वजह कहीं न कहीं हमारे अंदर ही हैं। अतीत हमारा कितना भी गौरवपूर्ण रहा हो, परंतु हमारा वर्तमान दासता को सहने का आदी हो चुका है और हमारी सामाजिक आदतें, निष्ठाएँ और रुढ़ियाँ पराधीनता की आदी हो चुकी हैं। तत्कालीन पतित समाज पर व्यंग्य करते हुए "सरस्वती" में सियारामशरण गुप्त ने लिखा –

"शुभ शकल पक्ष सुधांशु की शोभा बढ़ाता है यथा;
संसार की सुख सम्पदा हमने बढ़ाई थी तथा ।
अब हा! उन्हीं हम में न कुछ भी शेष गौरव आज है,
धिवकार है हमको, हमें आती न फिर भी लाज है ।"

हिन्दी के प्रथम राजनीतिक पत्र "हिन्दी प्रदीप" में बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' ने भी भारत की स्वतंत्रता के संबंध में विचार व्यक्त करते हुए लिखा— 'ओ स्वतंत्रता ! तुम भारत को छोड़कर क्यों भाग गई और उसे अकेला छोड़ दिया ? भगवान की बेटी, विश्व की प्रेमिका और गुणों की पुंज, तुम कहाँ गई? भारतवासी इस हानि पर बुरी तरह सुबक रहे हैं।'

भारतीय पराधीनता के वातावरण में राष्ट्रवादियों ने देशी भाषाओं को शिक्षा का माध्यम बनाने की आवश्यकता के महत्त्व को समझा। इसलिए उन्होंने देशी भाषाओं को भारतीय स्कूल कॉलेजों में शिक्षा का माध्यम बनाने पर जोर दिया गया। इस बात की पुष्टि सरस्वती में प्रकाशित लेख 'राष्ट्रीयता की हानि का कारण' में होती है। जिसमें Vernaculars as Media of Instruction in Indian School and Colleges नामक पुस्तक की समीक्षा की गई है। इस पुस्तक के लेखक पी.जे. मेहता ने इसमें यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि देशी भाषाओं को ही शिक्षा का द्वार बनाना चाहिए। उन्होंने इस बात में विश्वास व्यक्त किया कि जब तक हिन्दुस्तान के विद्यार्थियों को स्वभाविक और प्राकृतिक रीति से उनकी मातृभाषा के द्वारा शिक्षा न दी जाएगी तब तक भारतीय राष्ट्र स्वराज्य पाने के योग्य नहीं हो सकता।

इस पुस्तक की प्रस्तावना गाँधीजी ने लिखी, उन्होंने यह बताने का प्रयास किया कि— 'देशी भाषाओं की अवहेलना करने का यदि कुछ अर्थ हो सकता है तो वह केवल अपने हाथों से अपना राष्ट्रीय आत्मघात करना है।' उन्होंने आगे लिखा— 'कोई कितनी ही परोपकार वृद्धि अथवा उदार बुद्धि से कैसी भी अच्छी स्वराज्य पद्धति हमें दे, तथापि यदि हमारे मन में उस भाषा के विषय में आदर भाव न हो जिसे हमारी माताएँ बोलती हैं तो हम सच्चे स्वराज्य भोगी कभी न हो सकेंगे। देश के शुभचिन्तकों को इस पुस्तक के मतानुसार देशी भाषाओं के द्वारा शिक्षा दान के प्रयत्नों में शीघ्र ही लग जाना चाहिए।'

"राष्ट्रीयता की हानि का कारण" लेख में लेखक हिन्दी के संबंध में आगे कहता कि ने आगे कहा— 'यदि इस देश के लिए किसी एक राष्ट्र भाषा की आवश्यकता ही है तो वह अंग्रेजी भाषा कदापि नहीं हो सकती। यह अधिकार हिन्दी भाषा का ही है। हाँ, यह बात सच है कि इसे समझने और बोलने में दक्षिण के कुछ लोगों को कठिनता मालूम होती है, परंतु यह कठिनता थोड़े ही परिश्रम से दूर की जा सकती है। हिन्दी ऐसी सरल भाषा है कि इसे साधारण बुद्धिवाला मनुष्य भी प्रायः छः महीने में सीख सकता है। सामयिक साहित्य के पाठक अच्छी तरह जानते हैं कि हिन्दी इस देश की राष्ट्र भाषा हो चकी है। अतएव

राष्ट्रीय दृष्टि से प्रत्येक भारतवासी का कर्त्तव्य है कि वह कम से कम दो भाषाएँ अवश्य सीखे— एक अपनी मातृभाषा और दूसरी राष्ट्रभाषा हिन्दी।'

समाज में व्याप्त जड़ता को समाप्त करने में स्त्री शिक्षा महती भूमिका सकती थी। जिसे तत्कालीन लेखकों ने इसे अच्छी तरह समझ लिया था, इसलिए उन्होंने भारत में व्याप्त अशिक्षा को दूर करने के लिए राष्ट्रीय शिक्षा के व्यापक प्रचार—प्रसार पर बल दिया। 'इन्दु' में प्रकाशित "स्त्री शिक्षा के उपाय" में बताया गया कि 'जो साधन मनुष्य के लिए परलोक तथा इहलोक के लिए आवश्यक हैं वे सम्पूर्ण साधन स्त्रियों के शिक्षित होने से ही प्राप्त हो सकते हैं। इसी प्रकार से अन्य पत्र पत्रिकाओं में शिक्षा से संबंधित लेख प्रकाशित होते थे। द्विवेदी जी का "भारत में शिक्षा की दशा" तथा "भारतीय मेंबरों की बात" में तत्कालीन शिक्षा की दयनीय स्थिति और पिछड़ेपन का मुद्दा उठाया। जिसमें उन्होंने लिखा कि — 'हमें पक्के स्कूल और मंदरसे न चाहिए। हमें फूल बाग न चाहिए, हमें पोलो और क्रिकेट के मैदान न चाहिए। चाहिए हमें शिक्षा, जो इनके बिना भी दी जा सकती है।' गुरुनारायण मेहरोत्रा का "भारतीय शिक्षा प्रणाली के दोष" बनारसी दास चतुर्वेदी का "आधुनिक शिक्षा पद्धति" हरिहरस्वरूप शर्मा का "वर्तमान शिक्षा का आदर्श" काशी प्रसाद पाण्डे का "प्राचीन भारत की शिक्षा प्रणाली" आदि लेख इसी श्रेणी आते हैं। जिसमें राष्ट्रीय शिक्षा पद्धति के महत्व को प्रस्तुत किया गया। यह अभिव्यक्ति स्वदेशी और बहिष्कार आंदोलन के दौरान अपनाई गई राष्ट्रीय शिक्षा पद्धति के विचार और उसकी कार्यशैली को प्रदर्शित करती हैं।

I UnHkz %

1. सुधाकर पाण्डेय (संपा0), हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास, हिन्दी साहित्य का परिष्कार, द्विवेदी काल (संवत् 1950—75 वि0) नवम् भाग, वाराणसी, संवत् 2034 वि0 पृ0 286—379
2. वैद्यनाथ सिंह शर्मा, भारत का वाणिज्य, सरस्वती, जनवरी 1909, भाग 10, संख्या 1, पृ0 32
3. महावीर प्रसाद द्विवेदी, प्राचीन भारत की झलक, सरस्वती, जनवरी 1909, भाग 10, संख्या 3, पृ0 123
4. गोविन्द राम तीर्थ, भारतीय पुरातन राजनीति, सरस्वती, 1918
5. शिवदास गुप्ता, प्राचीन शासन पद्धति और राजा, इन्दु, दिसम्बर, 1914
6. गंगाशंकर मिश्र, सम्राट अशोक का राज्य शासन, इन्दु, अगस्त, 1914

I edkyhu dfork es ukjh dh fLFkfr

j.u.u ek\$ kZ*

समकालीन कविता का भावसंकुल, संवेदनात्मक धरातल, जटिलतर जीवन-स्थितियों से परिकल्पित और गठित है। किसी एक कविता में विन्यसित देशज स्वत्व-बोध जो अपनी अलग भाषिक संरचना से अतिरिक्त ढंग से गूढ़ और लोकधर्मी भले ही प्रतीत हो, अतीतोन्मुखी होने का उपक्रम नहीं है। जब कोई कवि अपनी समग्र लोकचेतना के जरिये स्वत्व का अन्वेषण करना चाहता है तो उसका अर्थ है, अपनी वास्तविकता को रेखांकित करना। यह अन्वेषण हमारी राष्ट्रीय दृष्टि के विपरीत नहीं है, लेकिन ओढ़ी हुई, थोपी गयी या आरोपित दृष्टि के विपरित है। ऐतिहासिक विवेक से ही ऐसी स्वत्वदृष्टि विकसित होती है। इस प्रकार समकालीन कविता का आभ्यन्तर बहुकेन्द्री है, इसलिए विश्लेषण के तौर तरीकों में निहित सरलीकरणों का विरोध करना पड़ता है।

कविता संस्कृति की उपज है, भाषिक चिन्हों से निर्मित संस्कृति की उपज। जिस प्रकार मनुष्य कई तरह से अपने को निर्मित करता है, उन रीतियों में से एक के रूप में कविता-रचना को देखा जा सकता है। कविता के बहाने कवि कई स्तरों पर अपने को सृजित करना चाहता है। इसलिए कविता में स्वत्व का परिवर्तन अभीष्ट ही है। उसको निर्णीत करने वाला सत्तात्मक पक्ष बहुकेन्द्री और बहुआयामी है।¹

नारी अनादिकाल से ही पुरुष की कामना रही है। वह उसकी शक्ति का स्रोत भी बनी है और दुर्बलता का कारण भी। समकालीन काव्य में पाया जानेवाला नारीरूप अपनी परम्परा की परिणति और सामाजिक तथा आर्थिक पुष्टभूमि का परिणाम है।

नारी का इतिहास जीवन की परस्पर विरोधी सम्भावनाओं का प्रतिबिम्ब लगता है। स्वातंत्रयोत्तर काल में जिस नारी का वर्णन हुआ है उसका इतिहास मध्ययुगीन सामंती दृष्टिकोण और छायावादी रोमांस है। इनकी पुष्टभूमि में वह प्रगतिवादी नारी दृष्टि है जो उपयोगितावाद की कसौटी पर खरी उतारी गई है। स्वातंत्रयोत्तर युग की नारी भारतीय आजादी से प्राप्त सारी सम्भावनाओं को स्वानुभूत कर नये जीवन की अभिलाषिणी है। उसका जीवन एक ऐसी दीर्घ परम्परा की परिणति है जिसमें अंधविश्वास, सामाजिक कुरीतियाँ और वामाचार की मान्तायें हैं। आर्थिक अभाव से वह विपन्न है और अशिक्षा से असहाय। आजादी के तीस वर्षों के बाद भी वह पुरुष पर आश्रित है और उसकी दया-दृष्टि पर ही उसके जीवन में सुख और शान्ति की सम्भावना है।²

समकालीन दौर में जो भी सामाजिक स्थितियाँ नए सिरे से परिवर्तन की अनिवार्यता के तहत विश्लेषित हुईं, जो सदियों से अस्वतन्त्र और पिछड़ी रह गई थीं, उनमें नारी दृष्टि भी है। इस मुद्दे को पूँजीवादी संस्कृति के विरुद्ध उनके विचारों के रूप देखना संगत प्रतीत होता है जिसके कई रूप हैं। स्त्री-सम्बन्धी पुरानी रूढ़ मान्यता उनमें से एक है। अतः समकालीन कवयित्रियों की रचनाएँ अपने स्वत्व का अन्वेषण करती हैं तो उसका आशय यह है कि पूँजीवादी संस्कृति जो नव उपनिवेशवादी रूप धारण करके समाज में व्यापित हो रही है उसके विरुद्ध संघर्ष जारी करने का प्रयास स्त्री-कविता कर रही है। इस अर्थ में समकालीन कवयित्रियों की कविताएँ सिर्फ एक विकासक्रम भर रही हैं।

कवयित्रियों की कविताओं पर विचार करते समय हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि इस दिशा में अन्य कवियों का योगदान कम महत्वपूर्ण नहीं है। वह इसलिए कि उनकी कविताओं में भी स्त्री-सत्ता के ऊपर पुरुषाधिष्ठित वर्चस्व को व्यापक अर्थ में ही लिया गया है। स्त्री के प्रति निरी सहानुभूति व्यक्त

*शोध छात्रा, हिन्दी विभाग, सल्तनत बहादुर पी0जी0 कालेज, बदलापुर, जौनपुर, उ0प्र0

करना उनका उद्देश्य नहीं है पिछड़ेपन को सुरक्षित रखने वाली पूँजीवादी दृष्टि के अर्न्तगत इन कवियों ने स्त्री और उसकी बेबसी को देखा है। कुछ उदाहरणों से यह बात स्पष्ट हो सकती है।

समकालीन कविता को दिशा देने वाली रघुवीर सहाय की दो छोटी-मोटी कविताओं का उल्लेख यहाँ किया जा सकता है जो उनकी 'सीढ़ियों पर धूप में' संकलन में संगहीत है। स्त्री की उपेक्षा के प्रति सहानुभूति दर्शाने की दृष्टि से उन्होंने ऐसी कविताएँ नहीं लिखी हैं। शब्द प्रयोग में निहित उनकी व्यंग्यात्मकता मानवीय मुक्ति की परिणति है। पहली कविता है—

किसी मूर्ख को ही परिणीता
निज घर बार बसाइए।
होय कटीली
आँखे गीली
तड़की सीली, तबियत ढीली
घर की सबसे बड़ी पतीली
भरकर रात पसारिए।³

इसमें जो व्यंग्य है वह स्त्री जाति पर पड़ता है और यही उसकी विशेषता है। दूसरी कविता का शीर्षक है "नारी"।

नारी बिचारी
पुरुष की मारी
तन से क्षुधित
मन से मुदित
लपककर झपककर
अन्त में चित।

इस कविता में एक दृश्य-विन्यास सा हो गया है जो स्त्री की समूची स्थिति को स्पष्ट करता है। इसकी गत्यात्मकता ने स्त्री पर भी चोट की है। करुणा एवं आर्दता से भिगोकर कवि स्त्री को प्रस्तुत नहीं कर रहे हैं। उसकी हल्की यथार्थ दृष्टि उसे शोषण में चरमराने के लिए बाध्य करती है। एक अयाचित सामाजिक प्रतिभान और एक भावदृष्टि के सातत्व में कविता में कवि की नारी-दृष्टि प्रकट होती है। 'देवी प्रसाद मिश्र' ने अपनी कविता में— औरतें यहाँ नहीं दिखती—स्त्री के निजी संसार के विभिन्न कोणों, गलियों, उभारों को कविता में प्रस्तुत करके उसके वहाँ पाने की बात कही है। स्त्री का वहाँ होना मुख्य नहीं है। स्त्री को वही होने की हमारी इच्छा में हमारी नैतिकता सिमटती-सिकुड़ती है—

औरतें यहाँ नहीं दिखतीं
वे आटे में पिस गई होंगी
या चटनी में पुदीने की तरह महक रही होंगी
वे तेल की तरह खौफ रही होंगी उनमें
घर की सबसे जरूरी सब्जी पक रही होंगी
गृहस्थाश्रम की झाड़ू बनकर
अंधेरे कोने में खड़े होकर
वे घरनुमा स्थापत्य का मिट्टी होना देखती होंगी
शीलन और अंधेरे की अपाठ्य पाडुलिपियाँ होकर
वे गल रही होंगी
वे कुँ में होंगी या धुँ में होंगी
आवाजें नहीं कनबतियाँ होकर
फुसफुसा रहीं होंगी

चीटियाँ होकर वे डोल रही होंगी
 ब्याज की तरह ढनगी कहीं
 गँधा रही होगी
 तिलचट्टो—सी वे कही घर में दुबकी होगी वे
 घर में ही होगी
 घर के चूहों की तरह वे
 घर छोड़कर कहाँ भागेगी।⁴

उपर्युक्त कविता में नारी—जीवन की असलियत का पता चलता है। एक कमरे की आवश्यकता चहारदीवारी न होकर व्यक्तित्व—विकास सही वातावरण से सम्बन्धित है। यहाँ औरत घर में रहकर भी अपने सही परिवेश सहित नहीं है। परिवेशविहीन होना जीवन में धुरीहीन होने के बराबर ही है। घर के चूहे की तरह है वे, इसलिए भाग नहीं सकती न छोड़े सकती है। इन पंक्तियों में उसकी बेबसी को ही देवी प्रसाद मिश्र ने प्रस्तुत किया है। उनके जीवन की धुरी ही नष्ट नहीं हुई है, बल्कि उनकी भाषा भी छीन ली गई है। धरनुमा स्थापत्य की मिट्टी होना, देखने की विवशता स्त्री के स्वत्व विघटन की चरम स्थिति है।

ऐसी अनेक कविताएँ हैं जिनमें कवियों ने नारी के स्वत्व—विघटन को अनुभव कराने के कवि धर्म को सफलापूर्वक निभाया है जो निरी सहानुभूति वश संरचित नहीं है। यह इसलिए है कि उनका मुख्य प्रतिपाद्य मानवीय सरोकार है। नारीसमस्या भी मानवीय सरोकार का पक्ष है। वे शोषण तन्त्र के विरोध में खड़ा होना चाहते हैं। नारी स्थिति में शोषण का सांस्कृतिक पक्ष मुख्य है।⁵

समकालीन कविता के महिला लेखन के परिदृश्य में कात्यायनी का नाम भी महत्वपूर्ण है। उनके कविता संकलन का नाम 'सात भाइयों के बीच—चम्पा' है और उसका समर्पण वाक्य है— "धारा के विरुद्ध तैरते उन तमाम लोगों को जिन्होंने इस अँधेरे दौर में भी न सपने देखने की आदत छोड़ी है और न लड़ने की। ये दोनों अकारण नहीं है। कात्यायनी में नारी का अदम्य इच्छा है। उन्होंने अपनी नारी दृष्टि को धारा के विरुद्ध तैरने वालों के साथ जोड़ा है और उनकी संस्कृति मानवीय मुक्ति से है। प्रथमतः उनकी कविता 'सात भाइयों के बीच चम्पा' पर ही विचार किया जाना चाहिए। चम्पा सिर्फ एक युवती होकर भी संवेदनात्मक धरातल पर नारी दृष्टि का प्रतीक बन जाती है। पुनः विस्मृत कर देने योग्य वस्तु में तब्दील करने की उसकी पारिवारिक इच्छा में गलत स्पेस और एक भाषा का इस्तेमाल वह अनुभव करती है। पर कात्यायनी अपनी कविता की चरित्र नायिका चम्पा के लिए प्रयुक्त गलत सन्दर्भों के विरुद्ध उठ खड़ी होती है।

अनामिका शिव की कविता का तेवर किंचित तेज है। वह अपने में पुरुष—विरोधी बिम्ब भी अख्तियार करती है और अभिशप्तता के स्वर को बुलन्द भी करती हैं। स्त्री—कविता का यह भी एक पक्ष है। 'और कोई नाम दो' (साक्षात्कार—जून, 1992) शीर्षक यह कविता समकालीन सच को काव्यांकित भी करती है:

मेरा नाम
 वेदना
 घुटन
 गुलामी
 करुणा
 कलाली की हाँडी
 भी हो सकता था।
 एक रिवाज
 या
 जूती किसी मर्दाने पाँव की
 खरीद और बिक्री

कुछ भी हो सकता है मेरा नाम।

उपभोगवादी संस्कृति ने नारी की अस्मिता को पहले से अधिक विकृत कर दिया है। इसलिए या तो वह खानों में बँट गई है या नगण्य है। अनामिका शिवनारी की इस अवस्था से है। प्रचलित आंतक के कारण कवयित्री का तेवर तेज हो गया है।

समकालीन दौर की कवयित्रिया की इन रचनाओं से ऐसा गलत बिम्ब गठित नहीं किया जाना चाहिए कि वे नारी-समस्या से ही वशीभूत हैं ऐसी बात नहीं है। वास्तव में ये समकालीन कविता की रचनाकार है। स्त्री-कविताओं का चयन इसलिए अनिवार्य हो जाता है कि हमारे सामाजिक ढाँचे में शोषण और उप निवेशी दृष्टि का जितना प्रसार है, नारी-दृष्टि उस अर्थ में प्रमुख हो जाती है। रूढ़ियों और अन्धविश्वासों में दबी हुई मानसिकता न वर्तमान का सपना देख सकती है न भविष्य का। इन कविताओं में नारी-प्रतिक्रियाओं से बढ़कर पतनोन्मुखी रूढ़ परम्पराओं की गहराई का पता लग जाता है। सामाजिक गतिहनिता के तहत नारी-जीवन के विभिन्न पक्ष अर्थवान हो जाते हैं।⁶

l nhkz %

1. ए० अरविन्दाक्षन, 2010; समकालीन हिन्दी कविता, राधाकृष्ण प्रकाशक प्राईवेट लिमिटेड, नई दिल्ली
2. सिन्हा, चन्द्रभूषण, 1985; स्वातांत्रयोत्तर हिन्दी काव्य और सामाजिक जीवन की अभिव्यक्ति, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी
3. ए० अरविन्दाक्षन, समकालीन हिन्दी कविता, पृ० 118
4. वही, पृ० 119
5. वही, पृ० 121
6. वही, पृ० 132,133

मनुष्य की स्वाभाविक एवं सहज प्रवृत्ति ने ही सहकारिता को जन्म दिया। जब से मनुष्य में चेतना आयी तथा वह साथ-साथ दुःखों एवं सुखों में सहभागी होकर वर्तमान के समय में आ पहुँचा है, जहाँ पूरे विश्व में सहकारिता अपनी एक अलग पहचान बनाकर देश एवं मानवता के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दे रही है। मूल रूप से सहकारिता (सहकार्य) से बनी है। सह, साथ मिलकर, कार्य शब्द कार्य करने का सूचक है। इससे स्पष्ट है कि सहकारिता का अर्थ साथ-साथ मिलकर कार्य करने से होता है। सहकारिता के पीछे जो भूल भावना छिपी हुई है वह एक से दो भले, क्योंकि उन्हें अपने श्रम के बदले अच्छा पुरस्कार मिलता है। इसका कारण यह है कि यदि एक गिरता है दूसरा ऊपर उठायेगा किन्तु वह व्यक्ति बड़ा अभागा होगा जिसे उठाने वाला कोई साथी नहीं रहता। सहकारिता सबके लिए एक एवं एक के लिए सबके विचार पर आधारित है। जहाँ कोई कार्य व्यक्तिगत समर्थ के बाहर हो जाता है और उसमें अनेक लोगों के मदद की आवश्यकता होती है, वही सहकारिता का जन्म हो जाता है। इस प्रकार किसी विशेष उद्देश्य से मिलकर कार्य करना ही सहकारिता कहलाती है।

सहकारिता सामान्य अर्थ में, एक आर्थिक संगठन है जिसमें मनुष्य स्वेच्छापूर्वक अपनी धार्मिक अभिवृद्धि के लिए समानता के आधार पर अपने साधनों को एकत्र करता है और लाभ प्राप्त करता है, यह और कुछ न होकर पारस्परिक सहयोग से आत्मनिर्भरता होती है।

सहकारिता का अर्थ विभिन्न समयों से भिन्न-भिन्न लगाया गया है। इन अर्थों में सहकारिता के अलग-अलग दृष्टिकोण रखे गये हैं :

1- i kphu nf"Vdks k % सामाजिक विकास के प्रारम्भिक चरणों में समाज कल्याण का आदर्श धार्मिक एवं नैतिक विचारों से संलग्न था। इसलिए जब भी समाज कल्याण का कोई भी कार्यक्रम चलाया जाता था तो उसमें नैतिक एवं धार्मिक विचारों की प्रमुखता रहती थी। ऐसे विचारों के पोषक में प्रमुख रूप से डॉ० विलियम किंग, चार्ल्स जीड का नाम आता है। इन धार्मिक विचारों का मूल हमारे रिति-रिवाजों में मिलकर अब हमारा संस्कार बन गया है। इसीलिए हम जब कभी भी अपने इष्ट मित्रों के यहाँ किसी आयोजन में सम्मिलित होते हैं तो उसके पीछे एक मूल भावना यह छिपी रहती है कि उसके आयोजन को सफल बनाने के लिए हम भी अपना आर्थिक और सामाजिक सहयोग दें। सहयोग की यह भावना प्राचीन काल से अब तक चली आ रही है। केवल उसके स्वरूप में परिवर्तन आ गया है। यह सहयोग भी सहकारिता का एक उत्कृष्ट उदाहरण है।

कुछ देशों में धार्मिक संस्थाओं ने सहकारिता के आदर्शों के प्रचार-प्रसार करने में बहुत सहायता की सन् 1866 तक सहकारी कॉंग्रेस का शुभारम्भ पादरियों के भाषण से हुआ करता था। यूरोपीय महाद्वीप की प्रायः सभी सहकारी साख समितियों का प्रमुख उद्देश्य लोगों का नैतिक कल्याण करना था।

पाषाण-काल के पूर्व जब मनुष्य जंगलों में घूमा करता था तब भी उसके सामने भोजन एवं सुरक्षा की प्रमुख समस्या थी। इसी से प्रेरित होकर परस्पर साथ-साथ रहने एवं एक दूसरे के सहयोग करने की प्रवृत्ति पैदा हुई जिसमें गांव व नगर की स्थापना हुई। भारतवर्ष में प्राचीन समय से ही सामाजिक एवं आर्थिक सम्बन्ध संयुक्त परिवार प्रणाली पर आधारित रहे हैं। हमारे सामाजिक आर्थिक एवं नैतिक

जीवन को इस प्रणाली ने काफी प्रभावित किया है। अतः कह सकते हैं कि सहकारिता हमारा संस्कार है तथा हमारे अन्दर प्रवाहित होने वाले रक्त में मौजूद है।¹

2- *ufrd nf"Vdks k* % भारतवर्ष में 1951 में सहकारिता समिति ने अपने प्रतिवेदन में कहा था कि यह आन्दोलन मूल रूप से नैतिक ही है। सहकारिता योजना समिति ने 1946 ई० में सहकारी आन्दोलन को एक नैतिक आन्दोलन माना था।

सहकारिता पूर्ण रूप से एक नैतिक आन्दोलन है। यह मानव के नैतिक पक्ष पर विशेष ध्यान देती है। यह परस्पर विश्वास, सद्भावना, मित्रता, सेवा तथा भाई-चारे के महान नैतिक आदर्शों पर टिकी हुई है जिसमें मनुष्य का सर्वांगीण विकास हुआ है। सहकारी आन्दोलन का यह दावा है कि वह शान्तिपूर्ण रीति से मूलभूत सामाजिक तथा आर्थिक परिवर्तन लाने तथा शोषण रहित और समता पर आधारित अधिक सहिष्णु सामाजिक व्यवस्था प्रारम्भ करने का सशक्त माध्यम है, जो व्यक्ति की गरिमा और समुदाय की भलाई में सामंजस्य स्थापित करती है।

सहकारिता मानव जीवन का एक दर्शन है क्योंकि मानवीय कल्याण ही इसका प्रमुख उद्देश्य है। इसका सिद्धान्त पूर्ण रूप से नैतिक आदर्शों से जुड़े हुए हैं, *ik0, p0, y0 dkth* के अनुसार— “सहकारिता एक धर्म, एक विश्वास है जो मानव को ऊँचा उठाकर उसे प्रतिष्ठा प्रदान करता है तथा उसमें बन्धुत्व की भावना तथा परस्पर सेवा का भाव जगाता है।”²

3- *vkfkid nf"Vdks k* % वर्तमान के भौतिकवादी युग में मानवीय कल्याण तथा देश के विकास का मुख्य आधार आर्थिक ही होता है। यह अर्थ राजनैतिक, सामाजिक व धार्मिक सभी विकासों का आधार होता है।

आज कुछ विचारक ऐसे भी हैं जो कि व्यवसाय करने में इसे एक तकनीकी के रूप में व्यक्त करते हैं। अतः दुनियाँ की सभी आर्थिक प्रणालियाँ जिसके मूल में काफी अन्तर होता है, सहकारिता को विकास का एक सशक्त माध्यम मानकर इसका आदर करते हैं।

उपरोक्त सभी परिभाषाओं के आधार पर यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि सहकारिता की एक सच्ची परिभाषा निम्न हो सकती है :-

“सहकारिता ऐसे व्यक्तियों का एक ऐच्छिक संगठन है जो लोकतंत्र, समानता तथा आत्म-सहायता के आधार पर निजी हित तथा सम्पूर्ण समुदाय के हित के लिए कार्य करता है। यह एक सामाजिक तथा आर्थिक आन्दोलन है जिसका आधार सेवा है न कि लाभ”³

यदि उपरोक्त सभी परिभाषाओं को ध्यान में रखा जाय तो सहकारिता के कुछ विशिष्ट लक्षण दृष्टिगोचर होते हैं जिसके आधार पर ही सहकारिता का स्पष्ट एवं सच्चा अर्थ निकलता है। ये विशेषताएँ निम्न रूपों से स्पष्ट किए जा सकते हैं :-

1. यह व्यक्तियों का संघ है, 2. सहकारी संस्था एक उपक्रम है, 3. एक ऐच्छिक संगठन, 4. इसका संगठन लोकतंत्रीय है, 5. इसका उद्देश्य सेवा है न कि लाभ, 6. इसका आधार समानता है, 7. सहकारिता न्याय पर आधारित एक सामाजिक, आर्थिक आन्दोलन है, 8. यह विश्वव्यापी आन्दोलन है, 9. यह संस्था कार्य के महत्ता को प्रधानता देती है, 10. यह संघात्मक पद्धति पर स्वचालित है।

I gdkfjrk dk egRo % आज के युग में सहकारिता का विशेष महत्व है। यह एक ऐसा विश्वव्यापी, सामाजिक एवं धार्मिक आन्दोलन है जो पारस्परिक सहयोग का पाठ पढ़ाता है, उत्पादकों एवं उपभोक्ताओं के हितों में समन्वय स्थापित करता है, प्रजातांत्रिक सिद्धान्तों के आधार पर एक साथ मिलकर रहने एवं कार्य करने में सहायक होता है तथा आर्थिक नियोजन को सफल बनाता है।

“सहकारिता आन्दोलन का यह दावा है कि शान्तिपूर्ण तरीके से मूलभूत सामाजिक परिवर्तन लाने और एक शोषण रहित, समता आधारित और सहिष्णु सामाजिक व्यवस्था प्रारम्भ करने का प्रमुख माध्यम है, जो व्यक्ति की गरिमा और समुदाय की भलाई में सामंजस्य स्थापित करती है”⁴

वास्तव में संगठित शक्ति आत्मनिर्भरता की पोषक है। महत्व से सम्बन्धित निम्न बातें विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं :-

1- सहकारिता का विशेष महत्व इसलिए अधिक है, क्योंकि यह सामाजिक कल्याण पर अधिक बल देता है। वास्तव में, यह एक सामाजिक एवं आर्थिक आन्दोलन है जिसका उद्देश्य समाज अथवा समुदाय की सामान्य भलाई करना है यही कारण है कि यह मानवीय मूल्यों पर सबसे अधिक जोर देता है।

2- सहकारिता भी सामाजवाद, पूँजीवाद तथा साम्यवाद की तरह स्वयं में एक पूर्ण आर्थिक पद्धति है। यह उक्त पद्धतियों के मध्य एक अपूर्ण मार्ग नहीं है। सहकारिता के संस्थापक दीन मजदूर थे, इसका प्रारम्भ भी धीमी गति से हुआ था तथा इसका विकास कृषकों की झोपड़ियों तथा मजदूरों—

3- सहकारिता का महत्व इसलिए भी अधिक है, क्योंकि वह मनुष्य के व्यक्तिगत के सर्वांगीण विकास में विश्वास करता है। वह मनुष्य के सामाजिक तथा नैतिक पहलुओं को अलग-अलग नहीं मानता। प्रो० एफ०एच० नाइट का कहना है कि व्यक्तिवाद ने मनुष्य के मानव मस्तिष्क तथा उसके विचार के सामाजिक पहलू तथा नैतिक, सामाजिक तथा आर्थिक जीवन पर समान रूप से बल देता है।⁶

4- सहकारिता का सबसे अधिक महत्व इस कारण है कि वह वितरण में न्याय पक्ष पर जोर देता है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए ही सदस्यों को वस्तुएँ तथा सेवाएँ उचित मूल्य पर दी जाने की व्यवस्था की जाती है। इतना ही नहीं जो आधिक्य या लाभ सहकारी संस्था के पास शेष रहता है, वह भी सदस्यों को उनके द्वारा किये गये क्रम के आधार पर बाँट दिया जाता है। वास्तव में, सहकारिता एक ऐसी आर्थिक प्रणाली है जो व्यवसाय में भी न्याय पर आधारित है।

5- सहकारिता पूँजीवाद तथा समाजवाद की अति को समाप्त करने वाला है। यह वास्तव में एक बीच का रास्ता है। यह एक ऐसा उदार आन्दोलन है जो व्यावहारिक होने के साथ-साथ अपने उद्देश्यों से आदर्शमूलक है।⁶ इसके अतिरिक्त यह शान्तिपूर्ण आन्दोलन, लोक तंत्रीय जीवन में सहायक, सभी व्यक्तियों को समान अवसर, आत्म सहायता तथा पारस्परिक सहायता, शोषण का अन्त आदि भी है।

सहकारिता का सबसे अधिक महत्व इसलिए है कि वह सभी प्रकार के शोषण का अन्त करने में सहायक है। मिर्था कमेटी के शब्दों में “सहकारिता आन्दोलन निर्धन व्यक्ति की शक्तिशाली और सम्पन्न वर्ग द्वारा किये जाने वाले शोषण से रक्षा करने का अति उत्तम संगठन प्रस्तुत करता है।” सहकारी अर्थव्यवस्था में न तो उपभोक्ताओं का और न ही श्रमिकों का शोषण संभव है। मजदूरों को उचित मजदूरी तथा लाभ में हिस्सा मिलता है तथा उपभोक्ताओं को उचित मूल्यों पर वस्तुएँ एवं सेवाएँ प्राप्त होती है। इस प्रकार उपभोक्ताओं और उत्पादकों के बीच का मन-मुटाव समाप्त हो जाता है।⁷

I UnHkZ %

1. रिसेन्ट टेडस इन कोआपरेटिव मोवमेन्ट इन इण्डिया रतन बिहारी त्योगी, एशिया पब्लिशिंग हाउस, बाम्बे
2. वी० एस० माथुर, सहकारिता, पृ० 13
3. इण्डिया कोआपरेटिव रिव्यू, 1965, जुलाई, बी०एल०मेहता)
4. कॉपरेशन, बी०बी० कारजाल
5. वी० एस० माथुर, सहकारिता, पृ० 43
6. बी०एल० मेहता—इण्डियन कोआपरेटिव रिव्यू, जुलाई 1965, पृ० 495
7. वी० एस०उ माथुर, सहकारिता, पृ० 46

KRISHNAMURTI ON MEDITATION

Dr Anjaneya Pandey*

Jiddu Krishnamurti, one of the greatest thinkers of 20th century was actually groomed by Mrs, Annie Besant to don the mantle of future World Teacher, but the traditional confines of a religious organization could not contain him. Much to the astonishment of the people around, he disbanded the '*Order of the Star in the East*' of which he was made the head. He said 'I maintain that Truth is a pathless land, and you cannot approach it by any path whatsoever, by any religion, by any sect.'¹ His exit from Theosophical environment could not stop him from becoming World Teacher. He toured the entire world delivering lectures, having dialogues with people of almost every area of interest. Among the thousands, who have found his life and his words profoundly meaningful and transforming, are writers like Henry Miller, Aldous Huxley, Iris Murdoch and George Bernard Shaw, scientists like David Bohm and J. Salk, politicians like Nehru and Indira Gandhi, spiritual figures like the Dalai Lama, Rajneesh, Deepak Chopra, Chinmayananda, Sandup Rinpoche, Deepak Chopra and Ken Wilbur, and other celebrities like Charlie Chaplin, Bruce Lee and Boris Becker. His insights into human consciousness are remarkable and whoever met him was stuck by the clarity of his mind. Here are a few pieces of his insight into what we commonly call meditation.

We know that right from ancient times mystics from almost all civilizations have on one or other occasion encountered the higher level of consciousness. This state of being in which the mind of the man is in touch of what he called 'God' came to be known as 'meditation'. Originally this state of mind was intangible but later on special people known as 'gurus' devised a way, a method to feel this state of mind. With most of the teachers and pupils this may be a simulation of mind, but then this method became the part of religion. Krishnamurti tries to take us back to the pristine state of mind that is in meditation.

Meditation in conventional language means sitting in a straight posture and controlling one's thought. This may be accomplished either by controlling one's rhythm of breath or by concentrating upon an image, an idea or both. The intention of the practitioner is to establish a link to God, thereby to send one's prayer and receive the divine intimation. To Krishnamurti all this seems to be merely a product of one's imagination. He explains:

At the moment when we pray we are fairly silent, in a state of receptivity; then our own subconscious brings a momentary clarity. You want something, you are longing for it, and in that moment of longing, of obsequious begging, you are fairly receptive; your conscious, active mind is comparatively still, so the unconscious projects itself into that and you have an answer. It is surely not an answer from reality, from the immeasurable – it is your own unconscious responding.²

So the process of prayer is actually a phenomenon of self-deception. Krishnamurti is critical of concentration, which he finds is a negative process. As the mind is not constant and is ever wavering, concentration is applied to control it and so the mind that was thinking of many things now seems to think about only one thing. The apparent reduction

* Asst. Prof. & Head Deptt. of English, Mariahu P. G. College, Mariahu, Jaunpur (U.P.)

and economy in the directions of focus gives one an illusion of discipline. But it is actually a byproduct of desire.

Concentration is not meditation, because when there is interest it is comparatively easy to concentrate on something. A general who is planning war, butchery, is very concentrated. A business man making money is very concentrated – he may even be ruthless, putting aside every other feeling and concentrating completely on what he wants....Such concentration is not meditation, it is merely exclusion.³

Concentration is the very antithesis of meditation. It inhibits self-knowledge. Meditation requires our being aware of the inside as well as the outside. This involves the withdrawing of thoughts from everywhere to oneself, not focusing it on something outside – however holy, however important. By taking our thinking away from our own self concentration deprives us of an opportunity of introspection, of self-knowledge. Concentration is a polarizing activity while meditation is a complete absence of polarity. Further, self-knowledge is not an end product of meditation; both occur simultaneously:

The beginning of meditation is self-knowledge, which means being aware of every movement of thought and feeling, knowing all the layers of my consciousness, not only the superficial layer but the hidden, the deeply concealed activities. To know the deeply concealed activities, the hidden motives, responses, thought and feelings, there must be tranquility in the conscious mind; that is, the conscious mind must be still in order to receive the projection of the unconscious. The superficial, conscious mind is occupied with its daily activities with earning a livelihood, deceiving others, exploiting others, running away from problems – all the daily activities of our extension. That superficial mind must understand the right significance of its activities and thereby bring tranquility to itself.⁴

If we deliberately try to listen to the trickery of the unconscious – as to how it sends deceptive signals to our mind, then again we are trapped, for our attempt involves concentrating on the unconscious, and as everywhere else it will yield some imaginary intimation, something limited in essence and effect. So we should not force awareness; we should be simply aware. Unlike in concentration, where we focus on an object of choice, in meditation there is no choice. Krishnamurti likes to call this ‘choiceless awareness’, awareness without choosing, without justification or condemnation, without any attempt at modification. Choice brings contradiction. As per popular thinking contradiction implies two forces or desires acting in directions opposite to each other, but Krishnamurti shows how it all begins with a single choice. The moment you have a fixed desire everything else seems to oppose that:

Contradiction arises only when the mind has a fixed point of desire; that is when the mind does not regard *all* desire as moving, transient, but seizes upon one desire and makes that into a permanency – only then when other desires arise, is there contradiction.⁵

Thus, in a state of meditation one is choicelessly aware of the movement of mind. It neither cherishes nor condemns any desire and thus all the desires arise and subside by themselves, leaving no mark on the consciousness. It is important to note that the mind is not separate from its content, and when there is an attempt at controlling the thought there is duality: a fragment of mind disguised as self tries to control the remaining mind, which is desire. But both the controller and the controlled are inherently same, and so this fragmentation leads to confusion and wastage of energy. Now in meditation, when there is no attempt at controlling the mind, the self as the controller ceases to exist. This ending of duality brings about an understanding of the self and its ways, and once you understand what actually is, there is no need to control.

Self-knowledge is the antithesis of belief. 'Do you believe that the sun rises?' asks Krishnamurti and adds 'It is there to see. You don't have to believe in that.'⁶ Indeed, we believe only when and only till we are ignorant. Meditation removes fear and along with it the necessity of belief. One begins to bask in the light of Truth that is his own, that can't be shared, that is immeasurable. Covering a span of ninety years Krishnamurti passed away on February 17, 1986. Just two days before his death he spoke to his doctor, Dr Deutch for ten to fifteen minutes encapsulating much of what he says about the nature of the world. Scott, who was there, records:

The one thing what I do remember Krishnaji saying to Dr Deutch was - "I am not afraid of dying because I have lived with death all my life. I have never carried any memories." Later the doctor was to say, "I feel like I was Krishnaji's last pupil."⁷

References :

- 1 Mary Lutyens, *Krishnamurti: The Years of Awakening*, pp. 267
- 2 Krishnamurti, *The First and Last Freedom*, p. 217
- 3 Krishnamurti, *Ibid*, p. 218
- 4 Krishnamurti, *Ibid*, p. 219-20
- 5 Krishnamurti, *Ibid*, p. 72-73
- 6 Krishnamurti, *Beyond Violence*, p.84
- 7 Mary Lutyens, *Life and Death of Krishnamurti*, p. 207-8

DISABILITY AND SOCIAL SECURITY IN INDIAN PERSPECTIVE

Supriya Singh*

As disability considers to be barriers faced by people with impairments to equality and justice, and because people with disability are human beings too it is axiomatic that disability is a social security issue. From a social security perspective, development programmes can no longer make excuses for not addressing disability. A more inclusive approach is the disability social security paradigm, which maintains as a moral imperative that every person is entitled to the means necessary to develop and express his or her own individual talent. This paradigm compels societies to acknowledge the value of all persons based on inherent human worth, rather than basing value on an individual's measured functional ability to contribute to society. This Research focuses on inclusive approach of disability as Social security. While the programmes of Social Security are to guarantee income maintenance or income support, the condition of the people with disability is somewhat different. Some might have become disabled due to work injury or accident or due to some other contingency during their work life. Such persons have employment related social security schemes in operation in India. However, there are majority of the people with disability in India who are not employed but require social protection. This paper seeks to address the problems of those along with their social security needs and attempts to design a policy of social security for them.

Introduction : The International Labour Organisation (ILO) defines Social Security as “the security that society furnishes through appropriate organization against certain risks to which its members are perennially exposed. These risks are essentially contingencies against which an individual of small means cannot effectively provide by his own ability or foresight alone or even in private combination with his fellows. The mechanics of social security therefore consists in counteracting the blind injustice of nature and economic activities by rational planned justice with a touch of benevolence to temper it.” Ironically, this definition does not cover the protection that has to be provided for the people who are already poor and therefore the Social Assistance programmes cover them.

Objectives

1. Social security concepts.
2. The challenges and barriers people with disabilities commonly face in claiming their
3. Social security how to express issues and frame advocacy strategies in India.

Methodology : In order to meet the above objectives, included two components: Interviews with a small sample of disabled persons, stakeholders from key agencies and organisations identified from the literature review as being of relevance to any strategy for tackling the issues around targeted towards disabled people.

Need for Social Security : Modernization and urbanization have resulted in radical socio-economic changes and give rise to new conflicts and tensions consequent upon the erosion of age old family and fraternal security. The transition from agricultural economy to an industrial economy brought in special accompanied problems that called for social security.

Purpose of social security : The purpose of any social security measure is to give individuals and families the confidence that their level of living and quality of life will not erode by social or

* Research Scholar, Department of Education, Delhi University, Delhi

economic eventuality; provide medical care and income security against the consequences of defined contingencies; facilitate the victims physical and vocational rehabilitation; prevent or reduce ill health and accidents in the occupations; protect against unemployment by maintenance and promotion of job creation and provide benefit for the maintenance of any children.

Social Security in India

Article 43 of the Constitution speaks of state's responsibility to provide social security to the citizens of this country. In India, we find all the above strategies in practice. For the purpose of discussion, we may categorize the social security schemes available in India as Preventive Schemes, Promotional Schemes, and Protective Schemes.

A. Preventive Schemes

Preventive Schemes are the Schemes aimed at risk prevention. In the strategy of social management of risks, preventive approach tries to prevent poverty and helps people under below poverty line to come above poverty line. Preventive health care, vaccinations against diseases forms part of the preventive strategies. Majority of the schemes are of social assistance in nature.

B. Promotional Schemes

Promotional social security schemes are mainly of Means tested Social Assistance type, where to guarantee minimum standards of living to vulnerable groups of population, the Governments at the State and Center draft schemes financed from the general revenues of the Government. These are the strategies of risk mitigation. This guarantee:

- Food and Nutritional Security by ensuring per capita availability of food grains, access to food.
- Employment security by ensuring employment by generating employment.
- Health Security by ensuring availability of medical facilities, maintaining standards of sanitation and drinking water, eradication and control of communicable diseases, timely vaccination of children and child bearing women, health insurance, old age homes and social insurance for the elderly.
- Education Security by ensuring opening of schools, Encouraging children to attend classes.
- Women Security: by empowering women, encouraging women literacy.
- Assistance to the disabled by undertaking programmes to promote health and education among the people with disability, providing rehabilitation services and reservations.

All the above form part of promotional social security schemes where State Governments are more involved than the Central Government. Examples of schemes in the promotional social security area include: Food for work, Jawahar Rojgar Yojana, Antyodaya, Rural Landless Labourers Employment Guarantee Schemes, programmes of Integrated Rural Development Project, Drought prone area Programmes, Sakshara, Integrated Child Development Scheme (ICDS), Public Distribution System, reservations for the disabled in services, special educational institutions for the people with disability etc.

C. Protective Social Security Programmes

The protective social security programmes help the poor in removing/reducing contingent poverty. These programmes take care of old-age income needs (Old age pension), survival benefits (Provident Funds), medical need of insured families (Medical Insurance), widow and children/dependant economic needs (Widow/Children/orphan, and dependent pension), maternity benefits, compensation for loss of employment and work injury benefits. The benefits are extended only to working population majority of who are in the organized sector through legislations like:

- Employees State Insurance Act 1948
- Workmen's Compensation Act 1923
- Employees Provident Fund and Miscellaneous Provisions Act 1952
- Payment of Gratuity Act 1972
- Maternity Benefits Act 1976

Social Security for People with disability in India

Having discussed the social security concepts and strategies and programmes available for the vulnerable groups, the need for the Social Security programmes for the persons with disabilities can hardly be overemphasized. However, we need to understand that the family has been the primary producer of welfare even before the birth of a welfare state on the lines of modern welfare approach. Later community, membership institutions, markets, and finally States provided welfare facilities.

“The Persons with Disabilities (Equal Opportunities, Protection of Rights and Full Participation) Act, 1995, inter-alia and strives to promote empowerment of persons with disabilities. The right to received support and assistance, although essential to improving the quality of life of people with disabilities, is not enough.

NSSO 58th Round, undertaken in 2002, estimates that about 1.85 percent of population suffer from some kind of disability. However, detail data are available now for designing a comprehensive social security system for persons with disabilities. In contrast, detailed statistics on the disabled population in Europe is available on the basis of which social security is planned and implemented. Some of the fundamental rights contained in the European Convention on social security and its Protocols, and the Revised European Social Charter include the right to education; the right to work; the right to private and family life; the right to protection of health and social security; the right to protection against poverty and social exclusion; the right to adequate housing etc. Based on these statistics the European countries are working hard to make their disabled people enjoy the fruit of the policies. Therefore, availability of detailed data on the disabled population in India is a pre-requisite for better planning and implementation of social security schemes.

Required Social Security programmes for the People with disability in India

Assistance and benefits both in the form of cash and kind will help ameliorate the condition of the people with disability who have to bear additional economic and social cost due to their disability. People with disabilities, like all people, require love and affection that is most often best provided by their families. Before designing the programmes suggested hereunder, this fundamental social understanding should not be overlooked. The cash benefits by way of assistance could be in the form of the following:

- Scholarships to the disabled children
- Old age pension to the aged and widows
- Unemployment assistance to the education disabled
- Cash subsidies for self employed
- Disablement pension
- Retirement pension

Available programme for the disabled

Currently reservations in services, concessions in employment, disability pension under the Employees' provident Funds and Miscellaneous Provisions Act 1952, medical and maternity benefits under Employees' State Insurance Act 1948, benefits under the Workmen's Compensation Act 1923, special schools for the disabled children, disability specific assistance programmes are available in the country, through the coverage is not comprehensive. There are no programmes for the disabled, dependent and aged widows excepting some very meager assistance given by some State Governments such as old age pension of Rs. 75 per

month. In addition we find that multiplicity of agencies and duplicity of benefits are very common to all the social security programmes available in India, and the plight of the persons with disabilities has no exception to this rule.

Conclusion

The current Social Security programmes are employment related and do not appear to have any special attention to the people with disability. To be eligible for the benefits one has to become disabled after getting into employment. This approach does not address the disability ab-intio and major problems of non-employment and poverty among the people with disability. People with disability in India are the most vulnerable group. Unfortunately, people with disability irrespective of their economic status are subjected to social exclusion in the society. Economic, psychological and social confidence building is therefore immediately necessary. Social Security programmes for the disabled, to some extent will relieve the pain of being dependent. Besides ensuring that available benefits reach them, more resources from local state, national and international agencies, Government and Non-Government Organizations need to be mobilized. For example, resources available under various Departments/Ministries and schemes such as Rural Development, HRD Ministry, Labour Ministry, DRDA Programmes, grant in aid schemes for special schools, pension schemes, UNDP programmes, CARART, and others need to be harnessed.

REFERENCES :

1. Anand,S. and Ravallion, M. 1993 “Human Development in Poor Countries: On the Role of Private Incomes and Public Services”, in Journal of Economic Perspectives 7(1).
2. Awasthi, R. and Panmand, D. K. 1994. Ralegan Siddhi: A Model for Village Development (Bombay, Foundation for Research and Community Health).
3. Chatterjee, Mirai. Et. al. 1994, “Organizing for Social Security- Some experiences of Self – Employed Women Workers” in Social Security in Developing Countries, (Social Security Association of India, Friedrich Ebert Stiftung, New Delhi)
4. Datta, R.C. 1998. “Public Action, Social Security and Unorganised Sector”, in Economic and Political Weekly , 33(22)
5. Government of India (GOI). 1966. Report of the Education (Kothari) Commission, 1964-66 (New Delhi).
6. Government of India (GOI). 1991. Report of the Committee for Review of National Policy on Education (NPE) (Ramamoorthy Committee), New Delhi
7. Government of India (GOI), Ministry of Social Justice and Empowerment. 1999.First Report of Expert Committee for Devising a Pension System For India (New Delhi, OASIS).
8. Government of India (GOI), Ministry of Finance. 2000. Economic Survey 1999-2000 (New Delhi).
9. International Social Security Association ISSA, 1991, “Social Security Protection of the Rural Population in Developing Countries” Report of the Asian Regional Round Table Meeting , (Regional Office of ISSA New Delhi)
10. James H. Schulz., 1996, “Economic Support in Oldage: The role of Social Insurance in Developing Countries”., International Social Security Association (ISSA)
11. Sarva Shiksha Abhiyan (2005). First Joint Review Mission (24 January–7 February 2005). Draft. Sarva Shiksha Abhiyan, India.
12. Singhal, N (2004). *Meanings of Inclusive Education: International concept, national interpretations.* Unpublished draft paper. Cambridge: University of Cambridge.
13. Times of India (2005). ‘Fund for disabled not utilized: NGOs’. The Times of India, Bangalore, 19 February 2005, p 7

THE ROLE OF HUMAN RESOURCE IN INDIAN ECONOMY AND DEVELOPMENT

Miss Kudshiya Raza*

Introduction

A study of the method to be utilized in increasing the productive abilities of a firm or a nation presents paramount problems; namely, how to enlarge the quantity and improve the quality of its pool of productive abilities found in available manpower; and how to utilize those capabilities most efficiently in order to achieve the desired level of production of economic goods and services and provide the optimum satisfaction to the members of organization. The question of how great the supply and how high the level of capacities of these resources should be, and of what method should be used to enhance their effective utilization and philosophy, as they involve ethical value judgments. Therefore, the managers of each firm and the leaders of each country must make their own decision relative to these important questions.

We are neither as rich nor as technologically advanced as we think, but our economic growth has come about primarily through over absorption of unemployed resources. The ultimate price of this extravagance will probably be the need to recycle all material as there will no longer be abundant resources. Conservation, rather than consumption, will become virtuous, although there is no clearly stated and adequate definition of the term, human resources. It can be thought of as the total knowledge, skills, creative abilities, talents, and aptitudes of a nation's production population, as well as the values, attitudes and beliefs of the individuals involved. From the point of view of an individual firm, it is the sum of the inherent abilities, acquired knowledge, and skills represented by the sum of the talents and aptitudes of its employees. In both instances, the quantity and quality of its human resources are functions of the number of productive individuals, their inherent abilities, and the extent to which those abilities are modified through environmental factors such as education, training and development. These productive factors manifest themselves in the individuals' abilities to generate new ideas, develop new and improved capital goods, and otherwise modify the available physical resources in order to achieve greater productivity and employee satisfaction.

The Human Resource Philosophy

The human resource philosophy, which views productivity of employees as being an economic resource of a firm or a nation, the employee himself, in his relationships to the other members of the organization, is viewed according to the concept of human dignity. This approach provides for the economic aspects of personnel administration, which is judged in terms of the economic analysis of employee productivity, efficiency, effectiveness, costs, and profitability. On the other hand, the philosophical aspect of personnel administration is given credence, that is, the importance of recognizing and respecting the personal dignity of each human entity. Although the human resources philosophy is made up of better elements of both the previous philosophies and may at first appear quite similar to the human relation philosophy, there are subtle but significant differences in its assumptions, and in the cause and effect relationships drawn from the assumption. In summary, the human resources

*Asst. Professor, St. Aloysius College, Jabalpur, M.P.

approach emphasizes the motivation and development of people through improving the attitudes and practices of key executives, clear workable standards for operation which provides guides for incorporating alternatives if the first procedure does not work the development of personnel, establishments of organizational objectives.

Economic Importance of the Human Resource

Economic historians formerly have given greater emphasis to physical resources as the causal factor in the economic growth and development of the nation than to human resources. The development of modern economies depends upon the exploitation of natural resources, capital and other physical factors; but none of these is of greater importance than the development of nation's human resources in the form of an adequately trained work force. Management literature has also neglected to emphasize the importance of the human function in the firm. First, there was a lack of knowledge about human behavior, as well as about the contribution it had made to business development. Second, the responsibility for performing the personnel was relegated to lower levels of management, where the emphasis was upon the machines and their effective utilization as a means of production. Finally, the human resource has been neglected because of the loss of individual dignity and creativity through mechanization, automation, and the growth of large and complex organizations.

The National Interest In Human Resources

Human resource is the key of development. The building of modern nations is predicated upon, and results from, the development of people and the organization of the human capacity. While capital, natural resources, foreign aid, and international aid play important roles in such economic growth, none of these factors is more important than an efficient pool of well-educated, well-trained and highly developed manpower. Therefore every nation has a vested interest building up a supply of productive employees.

This form of a capital is composed of the total personal qualities of a nation's populace, including inherent abilities, education, training, skills, techniques, experiences, knowledge, and other attributes that contribute to productive work. These factors are being wasted through unemployment; obsolescence of skills, lack of work opportunities for the aged, young people, and minority groups; poor personnel practices; and the difficulties of adjusting to change. also industry rarely "buys" an employees productivity in the sense that it pays him in direct proportion to what he produces; instead it buys his time for the period he is on the job and hopes that productivity will result .thus, as the human resource account for such a large proportion of our national output, there are tremendous possibilities for increasing productivity through the intelligent development of employee ability in the industrial and commercial complex of our economic system.

Constraints upon human resource development

Although it is not only desirable but mandatory for a nation to utilize its human resources, there are certain constraints and limitations which should be mentioned. An overabundant population or a poorly trained work force relative to a given level of physical and financial resources may actually be harmful to a nation's economic system, for if the system's aggregate outcome does not increase at a greater rate than the increase in total population, the standard of living of the population may actually decline. It has been concluded that a nation's economic and political analysis can overemphasize economic growth. In fact in government as well as in business and technology there has been an excessive emphasis upon the values and attitudes which are necessary for economic growth, while those values which cannot contribute to an increase in material wealth have been under emphasized. These are intangible values, such as work satisfaction, meaningful activity, and a generally harmonious existence. There needs to be a balance, and the importance of none material

satisfaction. The same generalizations can be made relative to given firm within a given economic system. If it has an overabundance of employees, or if they are incapable, or if they are inadequately trained, the company's economic position may suffer. However if the objective of the firm is primarily "social responsibility" then this becomes an ethical question rather than one of economic analysis.

Conclusion

A strong Indian economy which is vying to be an economic superpower by the year 2020 means a robust industrial growth, strong pool of foreign capital pooled with RBI, sound infrastructure, better standard of living, better per capita income, better employment opportunity for all, mature financial markets, 100% financial inclusion, better amenities and hygiene facilities. India with a steady growth and the right environment has been and will continue to attract the world business community. But it is the HR eco-system that will make the wheels of industry turn. Without it, start-ups can't get started and established companies can't weather the tough times or make the investments needed to gear up for the boom times.

India to vision itself as a super power, the corporate must consider recognition and development of human characteristic as a key company asset. Human capital advantage accrues when the enterprises in the economy are able to recruit and retain people with high potential. Human process advantage refers to processes such as learning, corporation and innovation that release and build on the potential of people. Both are required to achieve sustained competitive advantage through human resources. A combination of human capital with human processes for the development of the economy depends on the human resource competence of the country as a whole. Proactive approach of investment in growth rather than the reactive approach of investment for growth is truly the essence of employee training and development which can bring about flexibility, adaptability and provide career growth. Economic explanations for training and development focus primarily on the role of the individual and the returns to both individuals and organizations from the investments in training since the human resources yield a potentially inimitable source of competitive advantage, it is imperative to recognize the potential and the necessary processes must provide the impetus to enable the release of that potential. Training and development are two vitamins for energizing and providing the appropriate repertoire of skills and knowledge to make India "go, grow and glow".

References :

1. Tiwri, Ramesh, "Human resource management", ISBN-81-7910-090-1; Avishkar Publishers and Distributors
2. "Full Steam Ahead" by Drgitapiramal, "The Week, December 30, 2007"
3. "The Time is Ripe for Opportunities, "The Strategist of Business Standard' 15th January, 2008
4. HRM Reality, Putting Competence in Context by Peter J frost, Walter R Nord, Linda A Krefting

THE ROLE OF SCREENPLAY FOR SUPPORT OF POLITICAL PARTY : THE CASE OF DMK

K. Vijayakumar*

Introduction

Cinema is one of the Mass Media. All countries show much interest in film industry in recent days. India is second in the world film production. Cinema means story with dialogue, songs, dance, etc. Nowadays these are all based on social influences. Films are not only entertainment but also explain the real life of man, e.g. the poor and rich, caste system, social justice, ill-treatment of women, political rights, etc. Some political leaders used this media for propaganda of ideologies and principles of their party. In Tamil Nadu for example, the Dravida Muneatra Khazhagam (DMK) is one of the major political parties among the Dravidian parties. Many leaders of DMK are involved in Tamil cinema as writers and artists. This article explores the role of screenplay for support of political organization of DMK.

Formation of DMK

The DMK was founded in 1949 by C.N. Annadurai (CNA). The DMK also accepted some of the ideas of E.V. Ramasamy (EVR). However, C.N. Annadurai did not accept atheism and non-participation in elections. He formulated the ideologies of DMK. They included social justice, democracy, casteless society, women empowerment, promotion of Tamil language and culture etc..¹

Tamil Cinema

During early times, the tamil movies were mainly based on mythological stories, *i.e.* through songs, dances explained those stories. After 1930, some cinema merely echoed the National movement. In 1936, the movies came with stories from the society. The Tamil cinema has much to do with the life of the Tamil people in all its aspects. Some film actors supported and participated in the Freedom Movement. The Congress made use of movie stars such as K.B.Sundrambal, M.S.Subulakshmi by making them appear at political meetings². After the independence, the Congress leaders stopped politicizing of movies³. At the same time, the DMK used the movie media for propaganda of ideologies of the party. Kannadasan, a Tamil film song writer says that “They (Congress Party) decried the cinema. We Cinema used it”⁴.

Script writers of DMK

C.N.Annadurai, the founder of DMK, and M.Karunanidhi, second major leader of DMK were popular script writers in the Tamil cinema. And also AVB Asai Thambi, Kannadasan, Rama Arangannal, Murasoli Maran, members of DMK, were script writers in the movies⁵. In the period of 1948 to 1977, The DMK leaders and members were involved in the Cinema. When the DMK was formed some writers and actors joined DMK. Years 1948 to 1957 is called the first phase of Tamil movies. In this period the movie writers brought the problems of society and social justice through their screen plays⁶. C.N.Annadurai, called Anna by the people of Tamil Nadu, scripted six screen plays in total. He used directly and indirectly Dravidian ideologies through his scripts. He wanted the abolition of Zamindari system of taxation in the society through his first movie Nalla Thambi (good brother) (1948).

* Research Scholar, Dept. of History, Annamalai University, Annamalai Nagar

His movies such as Velaikari (Servant Maid) (1949) and Or Iravu carried hall marks of propaganda for Dravidian politics⁷.

In end of movie Vellaikari is announced 'Onnerakulam Oruvane Devan' (One race one god)⁸. On Velaikari, Annadurai said that the movie "made it clear that greed and avarice of the rich did not pay in long run[...]". Some of the elementary principles of socialism are stressed - that we should depend upon our labour for our progress and well being and not on some unknown factor.⁹

Karunanidhi, the second chief of DMK, started propaganda in his movies. Karunanidhi's Parasakthi (1952). Movie was a turning point not only for Tamil Cinema but also for the DMK. This film Parasakthi was written by him keeping in mind the early DMK's demand for a sovereign Dravidanadu (or) Tamil Home land. Karunanidhi's dialogue is in formal Tamil language. Overall themes of the movie were remarriage of widows, self respect and abolition of religious hypocrisy. This film is a milestone in the history of the Tamil cinema. Karunanidhi's movies Mantri Kumari (1950), Thirumpi Paar (1953), Manogara (1954), Poompugar (1964), Poomalai (1965), made a mark in the society as a film with a strong social theme and message¹⁰. His stories touched the very core of the social problems and narrated the superstitions. Karunanidhi's was highly influenced by Dravidian ideologies in his scripts.

In his scripts, the movie hero was the propagandist of DMK ideologies. He directly supporters ideologies of DMK in his scripts. He identified himself as a reformist of the Dravidian movement. Some films indirectly attacked ruling party (Congress). This way success stories of the Tamil ideologies of DMK went to every part of Tamil Nadu through the Cinema. In villages, DMK got glamour through support by the audience during the release of Karunanidhi's films. He used Cinema as a tool for the propagation for its ideology and also gave money to the development of the party through these plays¹¹. His films espoused Dravidian ideologies through use of lengthy dialogues.

Conclusion

Annadurai wrote his script to create political awareness of Tamil people. All his stories and screen plays have been based on social themes. Karunanidhi's screenplay fully criticized the opposition party. The congress leaders attacked DMK as a glamour party due to the entry of Annadurai, Karunanidhi, leaders of DMK, in the film industry. Their movies had been politically motivated. Many more fans joined the DMK party as a members. Most of the cinema fans called these films as DMK movies. Apart from screen play, songs, costumes and sets enriched the ideological manifestation in films for supporting the DMK.

References :

1. T.M. Parthasarathy, Timukhazhaga varalaru (in Tamil) Pari nilayam, Madras, 1963. Sparrt, DMK in power.
2. Wikipedia, the free cncyclopedia ; Tamil cinema varalaru, P.No. 42.
3. Ibid; Karthikesu Sivathamby, Tamil panpattil cinema, (in Tamil), New Century Book house Pvt., Chennai, P.P. 64-65.
4. Karthikasu Sivathamby, Tamil panpattil cinema, New Page No. 66; Wikipedia; Hard grave, Jr, Robert L, "Politics and the film in Tamil Nadu", The Stars and DMK (Asian Survey), p.p. 298 – 305.
5. Bharathi. K, womens in Tamil cinema (in Tamil), Viketan pathipagam, 2013, p.39.
6. Karthikasu Sivathamby, op.cit
7. Wikipedia, the free cncyclopedia
8. Bharathi. K, womens in Tamil cinema (in Tamil), Viketan pathipagam, 2013, p.p. 41 42.
9. Hard grave, Jr, Robert L, "Politics and the film in Tamil Nadu", The Stars and DMK (Asian Survey)
10. History of the Tamil cinema (in Tamil), Chennai publication, 2013.
11. M. Karunanidhi, Nenjukku Neethi (Vol. 1), Poompukar pathipakam, Chennai.

ONLINE MARKETING VS OFFLINE MARKETING

Mr. Jaideep*

Introduction

Management is a process through which goods and services move from concept to the customer. Marketing can be looked at as an organizational function and a set of processes for creating, delivering and communicating value to customers. Marketing is the science of choosing target markets through market analysis and market segmentation, as well as of understanding consumer behavior and of providing superior customer value. The origins of the concept of marketing have their roots with the Italian economist Giancarlo Pallavicini in 1959. These roots are accompanied by the initial in-depth market research, constituting the first instruments of what became the modern marketing, resumed and developed at a later time by Philip Kotler. Giancarlo Pallavicini introduces the following definitions: Marketing is defined as a social and managerial process designed to meet the needs and requirements of consumers through the processes of creating and exchanging products and values. It is the art and science of identifying, creating and delivering value to meet the needs of a target market, making a profit: delivery of satisfaction at a price.

It includes the coordination of four elements called the 4 P's of marketing:

- (1) Identification, selection and development of **product**,
- (2) Determination of its **price**,
- (3) Selection of a distribution channel to reach the customer's **place**, and
- (4) Development and implementation of a **promotional strategy**.

Marketing is based on thinking about the business in terms of customer needs and their satisfaction. Marketing differs from selling because (in the words of Harvard Business School's retired professor of marketing Theodore C. Levitt) "Selling concerns itself with the tricks and techniques of getting people to exchange their cash for your product. It is not concerned with the values that the exchange is all about."

Online Marketing

Online marketing refers to a set of powerful tools and methodologies used for promoting products and services through the Internet. Online marketing includes a wider range of marketing elements than traditional business marketing due to the extra channels and marketing mechanisms available on the Internet. Online marketing is also known as Internet marketing, Web marketing, digital marketing and search engine marketing (SEM). The broad online marketing spectrum varies according to business requirements. Effective online marketing programs leverage consumer data and customer relationship management systems.

Online marketing connects organizations with qualified potential customers and takes business development to a much higher level than traditional marketing/advertising.

Online marketing can deliver several benefits such as:

- Growth in potential
- Reduced expenses
- Elegant communications
- Better control
- Improved customer service

*VPO- Kakroi, Sonipat, Hariyana

- Competitive advantage

Online marketing synergistically combines the Internet's creative and technical tools, including design, development, sales and advertising, while focusing on the following primary business models:

- E-commerce
- Lead-based websites
- Affiliate marketing
- Local search

The internet has changed customer shopping habits and with rapid technological developments accessing the internet has become easier than ever. People can access the internet whenever and wherever they like. Why do people like using the internet? Listed below are some of the benefits of the internet for the customer.

The Key Benefits of Online Marketing

Cost Effectiveness

Internet marketing is a very cost effective option of promoting your business. Your business website can only take you to a certain level if you do not make the effort to increase its visibility. Internet marketing will make your business promotion dynamic and lively at a very nominal cost.

Very Wide Reach

One of the major online advertisement benefits is that it has global reach. Internet is a medium, which will enable a potential client from the other end of the world to reach you without any trouble. So, you can conveniently eradicate the traditional geographical boundaries and access a wide pool of client base easily accessed with the help of properly implemented internet marketing strategies.

Easy to Manage

You can easily manage your internet marketing programmes. Any change in the strategy can be brought about even when you are travelling or commuting for your business. What's more, even while on a vacation, you can make changes on the fly and save precious time that would have otherwise been wasted on an endless wait.

Track real-time results and Display of full information

The advantages of internet marketing can be translated in palpable terms. In other words, you can statistically measure whether your PPC campaigns are generating results or how much of the traffic is being converted into your customer base. One of the major benefits of marketing online is that it can help you to display as much information as you want about your product or service on the web.

Availability of 24 Hours

Your online advertisements will be available 24/7 for your customers through internet marketing. One of the major online advertisement benefits is that you have to put in a lot of effort initially, but once you develop a system, it becomes much easier to draw the profit.

Increasing the Returns on Investment on a Website

If you have spent a lot of money on developing a competent business website, you must also expect a good return from it. Internet marketing can ensure a good ROI as your website will be promoted to have a formidable online presence.

Discover New Markets

The primary target of any marketing strategy is to discover new markets for the business. Internet marketing can help you do that very effectively. It can help you draw a lot of vacillating traffic to your website, and can realistically help you to convert them into your clients. Internet marketing has various advantages.

Disadvantages

- * There's a LOT more competition. Promoting your business online offers international reach, but it also means you're competing with other international competitors.
- * Not everyone uses the internet. Consider your target market – do they have access to the Internet? Do they use it regularly? You need to truly understand your target audience before you decide to market yourself online.
- * There's a lot to learn, and the internet is constantly evolving. You might never know everything there is to know about internet marketing, but you can certainly try.
- * There's no personal interaction. Some customers enjoy the shopping experience of being in a store, getting advice from store personnel and physically touching or experiencing a product. This aspect of shopping is non-existent online.

Offline Marketing

Given the Internet's tremendous rise in popularity, today's marketers refer to other media channels that aren't connected to the World Wide Web as "offline." Offline marketing strategies utilize offline media channels to create awareness of a company's products and services. These campaigns can include radio and print advertising – including billboards, signs and pamphlets – telemarketing, and television ads.

So is offline marketing really dead? I mean with the ever-increasing popularity of the internet and social media sites like Youtube and of course facebook and their inevitable implications on the world of marketing and how businesses are conducted and advertised throughout the globe, the fact remains that offline marketing methods have not yet lost their effectiveness and appeal and today I'd like to discuss a few of the different offline marketing techniques which I believe with a bit of tweaking should still be included in your businesses marketing toolbox.

People still do not spend all their time glued to their computer screens and hence can be reached by incorporating a variety of offline marketing methods to successfully communicate their message. It should be kept in mind that while the internet is an important tool for reaching larger audiences in a short span of time, the more traditional and age long methods of offline marketing cannot be ignored completely without suffering ill consequences.

Offline Marketing Basics

- Before the internet and social media, conventional offline marketing techniques were being practiced by organizations all around the world and some of them are as old as the history of mankind.
- Even in the beginning days of radio and television, people had figured out that they could play a key role in the propagation of their businesses. If you are a business owner and want your product to be known across the households of your locality, it will perhaps be a good idea to prepare and run commercials on radio and television channels. The larger and more popular the channel, the more you will have to pay to get people to listen to what your advertisements have to say.
- Newspapers and magazines continue to be the primary tool for offline marketing of products and services. Companies can pay to acquire space in a newspaper for their advertisements.
- Distributing business cards has been an age old yet effective form of offline marketing for building a relationship with your trusted consumers. It gives a more personal and friendly look to your dealings in addition to providing the necessary contact details of a business outlet and/or personnel. It's important to mention that
 - Posting of flyers, leaflets, and posters. These should contain information about your business—an overview of the service or product you're offering, rates, business address, and contact number.

- Conventional mail systems have been in place for centuries and are still a trusted offline marketing method for reaching out to your existing customers. People who sign-up to be updated via mail are usually sent brochures, pricing plans and newsletters containing new products and available discounts etc.
- Another strategy of offline marketing is simply giving away free stuff. People love getting something for nothing so why not capitalize on this by using promotional material. Items such as stickers, pens, key chains, cheap gadgets bearing the company logo pleases people and makes them want to come back for more.

So still think offline marketing is dead? I don't either. I believe it just needs to be tweaked. I read somewhere that the average human is bombarded by hundreds of both online and offline marketing messages per day so you'd better make sure your message stands out.

References :

1. Indiresan J, "Some correlates of perception of organizational climate", *managerial2 psychology*, 2(2), 1981.
2. Narasimham Committee report on "The Financial system", New Delhi, Standard Book Co., 1991.
3. Drucker, Pater, F, "Goodbye to old personnel department", *The Asian Wall Street Journal*.
4. Goiporia M.N, "An overview of the financial markets", *SBI Monthly Review*, 31(4), April 1992.
5. <http://en.wikipedia.org/wiki/>
6. www.google.in

WORDSWORTH AS A POET OF NATURE

Dr. Shardha Mishra*

Wordsworth was a great poet of nature. Nature was deeply rooted in his mind and heart. Sometimes wordsworth becomes pantheist and sometimes he thinks nature a healing balm, a guide, a nurse and a bliss of solitude. In Tintern Abbey Wordworth has declared nature:

“The anchor of my purest thought, the nurse, the guide, the guardian of my heart and soul of all my moral being.”

Wordworth believes that there is complete oneness between the soul of man and the soul of nature. When such power of harmony is developed into the heart and mind of men who visits nature. So the soul of nature is associated with the soul of men who gets the power of joy. In this way for the poet nature is not only a source, a peace but also a source of happiness for human beings. For this reason Wordworth the highest priest of nature discovers the power of harmony and the power of joy in all the objects of this universe which we see in nature. Such is the staunch faith of the poet in Nature which he describes in these lines:

“It is my faith that every flower enjoys the air it breathes”.

Wordsworth has written a number of poems based on the theme of nature. Sometimes his poetic volumes are packed with striking passages on nature or its objects. His great poem entitled *The Prelude* (1799-1805) is considered the autobiography in verse. *Prelude* is a long poem divided into fourteen books.

Wordsworth’s poems based on the theme of nature are –

1. Education of Nature,
2. Tintern Abbey,
3. The World is Too Much With Us.
4. The Fountain A Conversation,
5. Influence of Natural Objects
6. She Dwelt Among the Untrodden ways,
7. Michael, A Pastoral Poem.

This paper is based on William Wordsworth as a Poet of Nature, which envisages the qualities of his nature poems and love towards nature depicted by William Wordsworth.

William Wordsworth is a major poet in English Literature. He is also known as the greatest poet of nature in the world. William Wordsworth was born at Cockermouth (Cumberland) on 7 April 1770 and he was appointed as the poet Laureate of England in 1843. He spent his childhood with his parents at Cockermouth and with his mother’s parents, where his father was attorney. His love of nature began at an early age.

Tintern Abbey is an epitome of poets faith in nature. It was composed in 1798 but five years ago the poet visited the banks of the river Wye, with his sister Dorothy in 1793 and after a long gap of five years the poet recognizes.

‘The beauteous forms of Nature’.

With lofty hills enchanting landscape and green vegetation, Wordsworth gets pleasure in the sweet sensations which he felt in the blood and in the hearth and it passed into his purer mind. For the poet nature becomes a kind of blessing.

“In the hour of weariness.” And ‘Amid the din of towns and cities’.

In his blessed mood the poet discovers the power of harmony between the soul of nature and the soul of man. This power of harmony leads him from joy to joy.

* Assistant Professor of English, Krishna Devi Girls College, Khandia, Farrukhabad (U.P.)

In this section of the poem the poet presents a gradual development of his love for nature. He describes four stages of nature. In his first stages of boyhood the poet enjoys all animal pleasure which he calls.

“Coarser pleasure of my boyish days’.

This stage is described as under:

“I came among these hills when like a roe
I bounded over the mountains, by the sides,
Of the deep rivers and the lonely streams,
Wherever nature led: more like a man.
Flying from something that he dreads, than one
Who sought the things he loved. For nature then.

(The coarser pleasure of my boyish days, And their glad animal movements all gone by)

In his second stages, as a young man the poets get sensuous pleasure like that of John Keats, with the help of the world of eye and ear the poet looks at nature its tall rocks and mountains with their colours and their forms thus the poet’s hunger for those beautiful forms of nature becomes a passion; the poet says:

“The sounding cataract, Haunted me like a passion: The Tall rock,
The mountain and the deep and gloomy woods,
Their colours and their forms, were then to me, An appetite, a feeling and a love.”

In the third stage Wordsworth had a chance to go to France to see French Revolution which broke out in 1789 and which was based on the three principles of equality, liberty and fraternity. Such a great influence of French Revolution on the mind of the poet make him more a lover of man than a lover of nature. Human problems of life obsessed (haunted) his mind most and the poet heard:

“but hearing often times, The still sad music of humanity
nor harsh nor grating through of ample power, To chasten and subdue.”

In the fourth stage the poet realizes again the existence of soul in all the objects of nature. He develops a sublime sense in which he discovers that soul lives in the light of the setting sun, the round ocean and even in living air. Such a spiritual experience makes the poet a high priest of nature as a mystic philosopher he discovers:

“A motion and a spirit, that impels
All thinking things, all objects of all thought, and rolls through all things.”

To conclude Tintern Abbey may be treated as the poet’s spiritual autobiography He discovers such spiritual light

“That was never seen on land and sea”

In the company of his sister Dorothy Wordsworth his dearest friend the poet seeks for blessings & guidance. These blessed guidance protects a man from the evil tongue and rash judgement of this world. As a staunch lover of nature Wordsworth faith in nature is never shaken because in the concluding part of the poem the poet declares:

“Nature never did betray
The heart that loved her”.

References :

1. William Wordsworth : Select Poems. By. Sahitya Bhandar Shubhash Bazar, Meerut, p. 78
2. Ibid, 68
3. Ibid, 77
4. Ibid, 91
5. Ibid, 94
6. Ibid, 122

CHALLENGING DIMENSION OF LAKE : A CASE STUDY OF KECHOPALRI LAKE IN SIKKIM

Hasibul Rahaman*
S.A.H.Moinuddin**

Introduction: India has a rich cultural tradition. There is a harmonious blend of art, religion and philosophy in the Indian culture. They are so beautifully interwoven in the fabric of Indian way of life and thought that they are inseparable. In most cases, the references have been limited to the paragraph or paragraphs defining concepts such as 'cultural property' or 'cultural heritage', or, more in general. The cultural heritage may be defined as the entire corpus of material signs - either artistic or symbolic - handed on by the past to each culture and, therefore, to the whole of humankind. The paper is an attempt to capture possible challenges of social religious role and it is based primary as well as secondary data using through sociological; tools techniques.

Sikkim, a small and beautiful state nested in the Himalayas is a landlocked state bounded and its 3 sides by the international border Tibet, Bhutan and Nepal in the North-East, East and West respectively and south by the Darjeeling district of West Bengal. It has a total population of 6.7lacs (according to the 2011 Census). The social compositions (ethnic group) of Sikkim are - Lepcha (19%), Bhutia (16%) and Nepali (56%) which constitutes a majority of the population of Sikkim is a multi-ethnic state- Lepcha, Bhutia and Nepali forming the main ethnic group.

The Kechopalri Lake is situated under Chho-jo block of West Sikkim. The lake is surrounded by forest which is characterized by bio-diversity. The village is also named as Kechopalri. The village of Kechopalri is a residential place of multi-ethnic groups. It is primarily inhabited by Buddhist religion and most of them are enjoying tribal status. The village comprises of 75 households with total population 500.

The average household size in the surveyed village is five people and the approx mean age of the respondents is 50. Percentage wise distribution of castes and communities shows that there are 53.33% of the households belonging to the Bhutias, 26.66% Lepchas, 13.33% Sherpas, 4% Mangars and 2.66 % are Chetris respectively. The least (2.66 %) percentage of Chetris is belonging to Hindu religion.

Historical account of lamaism in Sikkim : The Guru Padma Sambhava, the Lotus Born, also Guru Rimpoche, brought Buddhism to Sikkim through Tibet in the eighth century A.D. He was a teacher of Mysticism at the Nalanda University and was well versed in Tantricism. The Guru Rimpoche is believed to have visited Sikkim during his travels in Tibet.

The establishment of Lamaism in Sikkim, is the time of Lhatsun Chhembo's arrival in about the middle of 17th century.

Lhatsun Chhembo arrived in Sikkim with two other lamas of Nyingmapa sect. by the western gate of Singile la came another lama named Sempah Chhembo. Rigdzin Chhembo, the third one, came from south gate by way of Darjeeling. The place where the three lamas

*LMI No 2731, Assistant Professor, Deptt. Of Sociology, Haldia Government College, P.O. Debhog, Dist. Purba Medinipur, West Bengal

** LMI No. 1734, Professor, Deptt. of Sociology, Vidyasagar University, Medinipur, Paschim Medinipur

met was named, Yuksam, which means 'three superior ones'. The three lamas held a council and decided to look for a forth because in the prophecy of Guru Rimpoche it is believed that four noble brothers shall meet in Sikkim and make for government. They have come from North, South and West. It has been told that there is a man in the east named Phuntshong, a descendent of the brave ancestors of Cham in eastern Tibet. So, according to the prophecy of the Guru they invited him to join them.

Messengers were dispatched. Phuntshog was sought and found, and consecrated Ruler by the three lamas as the fourth superior lama from the east. He was given Lhatsun's own surname of Namgyal and the title of 'Chogyal' (Dharma Raja). He was 38 years old at that time. This was believed to have taken place in A.D. 1642.

Gradually through the years, Lamaism became the state religion, and with its growth innumerable monasteries were built throughout the land.

Socio-Religious Function of the lake: The lama of Kechopalri Lake has performing a crucial role from religious point of view. The Kechopalri Lake is an important sacred centre, attracts a large number of visitors. However, it has been observed that the number of visitors considerably increased particularly during the tourist season (March- May). So far as field data is concerned that the visitors comes from different parts of India Like as West Bengal, Bihar, Uttar Pradesh, Delhi, Kashmir, Maharastra etc. The visitors come from various religious backgrounds such as Hindu, Buddhist, Christian and Islam also. As it is interesting to note that married, unmarried, widow and widower etc are considered as civil background and they are coming from colorful profession such as - medical, teaching, business, research, agriculture, students and housewife etc. the visitors are keeping different purposes in their mind and make a vow for fulfillment their wishes. The purposes of the visitors may be divided into number of heads which are namely:

i) For household peace, ii) For getting children, iii) To cure the disease, iv) To pass the examination etc.

As we can say based on field work source that the visitors of the lake makes a vow through performing puja with the help of the present lama of the lake. The visitors are bringing all sorts of item for puja purpose and they are strictly follows the lama's advice over the lake area. All the visitors are normally directed to follow the Buddhist norms during the prayer in the lake but they are free to make a vow of their own style. The lama has no particular fees for performing puja but visitors are usually pays him little amount of rupees or kinds as their own level of capacity.

The Kechopalri Mela: The Kechopalri mela in West Sikkim is perhaps the largest and most of significant of its kind. It is held near the Kechopalri Lake monastery on the occasion of ' Maghe Purna' from March 12th to 13th , 2011 and attracted pilgrims from all over Sikkim. Not only Indians, but foreigners also attend and enjoy it. It has a special gravity. The pilgrims worshipped the spiritual power and offered various foods -materials into the lake to appease God. They are using the Lake's water as a 'Prasad'.

Objectives of the Festival: The Bum Chu festival got initiated at Tashiding Monastery which is almost 24 km far from the Lake Kechopalri. The festival generally coincides with Maghe Purne in every year. There is a holy water pot inside the monastery filled with water to the brim while prayers continued overnight. In the early hours these pots were basically uncovered in the presence of High Lama by the monks. If the water showed the ripples, that year could prove to be bad for Sikkim and vice-versa. Since, Kechopalri Lake is the gift of Goddess Tara, Jetsun Dolma (according to mythological view), pilgrims assume the lake to be presented by the pot and used the lake's water as 'Panchamirth'. They pray and offer different products so that the lake will not dry if it is happened people are doomed.

The second day of the festival is switch over by Lamas' prayers. The pilgrims reached by all modes of transport. The level of pilgrims increased and some state minister

along with few officials of Ecclesiastical department have visited the lake. This is the peak level of pilgrims about 5000 -10000 in number.

Pilgrims Activities : People of Sikkim believe that the Lake Kechopalri has her own divinity power to release the people from distress. They appease God by offering some materials. Even the temple offerings in the form of flowers, incense sticks cast into the lake's water every day take its toll. It is observed that pilgrims offered different 6 types of fruits, milk, raw rice, fried rice, mustered oil, dalda, biscuits, bread sugar and the like into the lake.

The last day of the festival is very significant day. The Kechopalri Lake is a renowned water body of Sikkim has number of mythological stories. A team of the lamas reached the wooden ramp to prove the reality of the lake's myths. The old monk has fold few khadas writing some sacred words and throw them into the lake. The water of the lake then started bubbling after few minutes. This is astonishing. Hence, it is assumed, that the reality of living God existed in the Kechopalri Lake. It is early morning feature of the final day.

Challenges of Lake: Soil and nutrient losses were highest in the cultivated area and least in the cardamom agro forestry system. Sediment loads of 345 mg per year were recorded at the lake inlet and of 316 mg per year at the outlet. Annual soil loss from the lake watershed was 502 mg per km and a net sediment deposition in the lake was 141 mg per year. The lake received high nutrient loads (organic carbon of 10.2 mg per year, total nitrogen of 1.01 mg per year and total phosphorus of 0.51 mg per year) from soil erosion and overland flow. The PH, total phosphorus and bulk density of the peat increased from the lake towards the bog-forest edge. This reflects the trapping of sediments and nutrients around the bog forest margin, although their retention is limited. Agricultural practices should be minimized in the upper part of the watershed and agro-forestry practices should be encouraged to maintain the health and longevity of the lake. The following are some of the problems faced by the lake in addition to the above

Construction activities : o Agriculture in the catchment, o Biotic interference such as grazing, o Unregulated tourism, o Change in the composition of the water.

Conclusion: The lake needs to be developed to the desired extend in order to conserve the lake environment, its catchment, etc., The lake also needs attention to provide required amenities for conduct of traditional rights and rituals and also the required tourist amenities in order to encourage tourism to keep cultural heritage.

References:

1. Arora, V. 2006. Roots and the Route of Secularism in Sikkim, in Economic and Political Weekly, Sept.23: 4063-4069.
2. Barth, B. 1975. Rituals and Knowledge among the Baktaman of New Guinea. New Haven: Yale University Pres.
3. Choudhuri, P.K. 2004. Sociology of Pilgrims. Delhi: Kaplaz Publication
4. Risely, H .H. 1894 . The Gazetteer of Sikkim. Delhi: B. R. Publishing Company
5. Sargent, F. (ed.) 1974. Human Ecology. New York: North-Holland Publishing company
6. Sen, G.(ed.). 1992. Indigenous Vision: People's of India; Attitude s to the Environment, New Delhi: Sage Publication
7. Sikkim : A Statistical Profile, 2004-2005. Government of Sikkim: Directorate of Economics
8. Vidarthi, L.P. 1961. The Sacred Complex of Hindu Gaya. Delhi: Concept Publishing Company

INNOVATIONS IN ELEMENTARY TEACHER EDUCATION

Mr. Puneet Kumar*
Mrs. Preeti Vashisht**

Education is the process of development which consists of the passage of the human being from infancy to maturity and the process whereby he adapts himself gradually in various ways to his physical, social and spiritual environment. In the process of imparting education to the child it should be kept in mind that child don't become parasite. He must payback by realizing the goals and objectives that education set for him up to his optimal capacity, sincerely and honestly. Education must focus on total and optimal development of human resource. The whole world is passing through the process of globalization, privatization and liberalization requiring economic, political, social and educational changes in developing and developed countries. Moreover this is also a fact that if changes are not made to suit the changing needs, the stagnation will set in. therefore, a climate which promotes innovation or newness is absolutely essential for any system or organization for its growth and development. Likewise, many innovations were conducted in the field of teacher education. These innovations have brought many changes and reforms in this field. Some of the innovations are discussed in this paper.

Concept and Definition of Innovation:

The word innovation is derived from the Latin word Innovate "which means to change something into something new. The International Dictionary of Education describes "Innovation" as promotion of new ideas or practices in education and teaching.

National Council of Educational Research & Training (2007) states that Innovation is more than having new ideas, it includes the process of successfully introducing them or making things happen in a new way. It turns ideas into useful, practicable and commercial products or services.

Components of Innovation:

The innovation has the following components:

Subject of Innovation-Innovation relates to something i.e. changes which may include a product, service, activity, initiative, structure, programme or policy. In a way it addresses the need, which the system feels significant to deal with.

New Ideas-Innovation involved the generation of new ideas. This suggests two things. First, the innovation involves using creativity to develop idea. Second, that the ideas must be "new" insofar as they are either an improvement as something that is fundamentally new, or the application of existing ideas to a new context.

Significant Change- The change that is brought about must be significant and positive; i.e. it must go beyond minor incremental tinkering, yet does not necessarily have to be a revolutionary departure. Significance in the sense that it must relate to some improvement that is deemed to be important.

*Research Scholar, Sai Nath University, Ranchi, Jharkhand

**Research Scholar, Sai Nath University, Ranchi, Jharkhand

Application- Creative ideas don't, in themselves, constitute an innovation. The new idea must be applied to some organizational activity. Thus innovation involves the practical implementation of new, ideas; otherwise, one is simply left with an unused invention. This implementation may also involve artfulness, creativity and skill to secure acceptance.

Innovative idea- They provide the needs to be feasible in the sense of being replicable in the system as a whole or significant part of the system.

In brief, innovation is the creative generation and applicable in the system as a whole or significant improvement in product, service, activity, initiative, structure, programme or policy.

Characteristics of Innovation:

Innovation is said to possess some attributes or characteristics. An innovative requires widespread acceptance but the group or social system as also by the individuals. Only then it will become successful and will be put into practice by organization. Five characteristics of the innovation have been identified are worth mentioning. These are 1. Relative advantage, 2. Compatibility, 3. Less complexity, 4. Friability, 5. Observeability.

The NCERT had organized a National Seminar on INNOVATIONS IN SCHOOL AND TEACHER EDUCATION in 1997. The seminar focused on important characteristics of innovations. An innovation should be:

- * New to the system of environment as perceived by individuals.
- * Better than what is already in existence.
- * As deliberately planned and not haphazard.
- * Contextual to the local system or environmental conditions.
- * Capable of making unfamiliar as familiar.
- * Suitable for achieving predetermined goals.
- * Positive in nature.

SARVA SHIKSHA ABHIYAN :

The SARVA SHIKSHA ABHIYAN is an effort to universalize elementary education by involving community in the school. The aim is to provide useful and relevant elementary education for all children in the age group 6 to 14 years. This is to bridge the gap of social, regional and gender gap with the active participation of the community in school. The programme has many innovative components like convergence of efforts and schemes. Coordination with the other departments, decentralized planning, management and monitoring of educational activity, micro-planning, alternative delivery system, integrated education with children with special needs.

Elementary Teacher Education An Integrated Approach :

The Mirambika, Sri Aurobindo Educational Society, New-Delhi (1983) has introduced an integral approach for elementary teacher education. The programme aims through a process of increasing self awareness, the maximum development of capacities and qualities of physical, affective and cognitive layer of self discovery of deeper and subtler layers of one's soul and spirit.

Shangabad Science Teaching Programme (HSTP) :

Eldavya, an NGO initiated teacher training programme under HSTP project in 1982 to improve the teaching, the science in government school in Madhya Pradesh. Every teacher has to undergo residential training for three weeks every year for three years. There were yearly follow up programmes. The chief aim was that the teacher should experiment that child has to do.

Conclusion : To conclude, it may be stated that an attempt has been made to discuss the meaning, characteristics and need of innovations at the elementary teacher education level. Besides these, illustrations of some innovations like Lab Area Approach, Sarva Shiksha Abhiyan, Reflective Teacher, Teleconferencing, Mirmbika Programme and Teleconferencing mode of training are also discussed.

References :

1. Connell A., and Mattinson, K. (2007) An exemplification of the revised standards for qualified teacher status-A support document for Curriculum Tutors, Education tutors, Professional Tutors and Subject Mentors in the Keele ITE Partnership. (UK, Keele University).
2. Connell A., Edwards, A. And Hammond M. (2007) An exemplification of the revised standards for qualified teacher status in Secondary ICT-A Discussion and Support Document (UK, ITTE
3. Yadav, G.P. (2010) Education In the Era Of LPG presented at National Seminar at VMIT Meerut.
4. NCERT (2007) All India Competition on Innovate Practices & Experiments NCERT, New Delhi.
5. NCERT (2007) All India Competition on Innovate Practices & Experiments in Education for Schools and Teacher Education Institutions, Information Bulletin, NCERT, New Delhi
6. NSCL (2006) Developing a strategic educational vision, NPQH module 1.1 (Nottingham, England, NCSL).
7. Yadav, S.K. (2000) Case Study of DIET's : Some Reflections, DTEE, NCERT, New, Delhi

A GREAT SOCIAL REFORMER: RAMARAYANINGAR (RAJA OF PANAGAL)

Sodan Singh*
Dr. Ram Naresh Baghel**

Ramarayaningar was born in Kalahasti on 9 July 1866. He was educated in Madras and obtained degrees in Sanskrit, law, philosophy and Dravidian languages before entering politics. He was one of the founder-members of the Justice Party and served as its President from 1925 to 1928.

From 17 December 1920 to 11 July 1921, Ramarayaningar served as the Minister of Local Self-Government in the first Justice Party government led by A. Subbarayalu Reddiar. He served as the Chief Minister of Madras Presidency from 11 July 1921 to 3 December 1926. He introduced a number of reforms during his tenure. The Theagaroya Nagar locality in Chennai was developed during his Chief-Ministership. Ramarayaningar resigned as Chief Minister in 1926 when the Justice Party failed to obtain a majority in the 1926 elections to the Madras Legislative Council. He, however, continued to remain active in politics and served as the President of the Justice Party until his death on 16 December 1928.

Early life

Ramarayaningar's family patronised Brahmins and the Raja had his early education in the household of Calamur Sundara Sastri, the father-in-law of C. P. Ramaswami Iyer. He completed his schooling from Triplicane High School in 1886 and graduated in Sanskrit from the Presidency College in 1893 with Advanced Chemistry as his optional subject. He graduated in B.L. and M.A. (Philosophy and Dravidian Languages) in 1899. In 1919, he was appointed a fellow of the Presidency College.

Early political career

Ramarayaningar got his first taste of politics when he was appointed to the district board of North Arcot. In 1912, he was nominated to the Imperial Legislative Council of India and represented the landlords and zamindars of South India. He served as a legislator until 1915. During this period, Ramarayaningar earned the praise of the Viceroy, Lord Hardinge. He actively supported reforms in the Hindu society.

In 1914, the Madras Dravidian Association was established by C. Natesa Mudaliar. Ramarayaningar was elected as the first President of the Association. On 19 July 1917, at a conference in Coimbatore presided over by the Ramarayaningar, the four different non-Brahmin associations got together to form the South Indian Liberal Federation, unofficially known as the Justice Party. In 1921, Ramarayaningar was sent along with Kurma Venkata Reddy Naidu and Koka Appa Rao Naidu to lobby on behalf of the Justice Party before the authorities in England.

Ramarayaningar was also active in the All-India Non-Brahmin movement. He was a friend of Shahu Maharaj and was closely associated with the former's Satya Shodhak Samaj. He attended the All India Non-Brahmin Conference held at Belgaum on 26 December

*Research Scholar, Sai Nath University, Ranchi, Jharkhand

**Lecturer in History, Kisan Inter College Madhi, Meerut

1924 and presided over the Second All-India Non-Brahmin Conference held at Victoria Hall, Madras on 25 May 1925.

Chief Minister of Madras

Ramarayaningar served as the Chief Minister of Madras from 11 July 1921 till 3 December 1926. A. P. Patro of Berhampur was appointed to fill the vacancy caused by Subbarayalu Reddiar's resignation, and he took the portfolio of education.

Buckingham and Carnatic Mills Strike In 1921

In 1921, a labour strike erupted in the Buckingham and Carnatic Mills in Madras. This strike was led by V. Kalyanasundara Mudaliar, a leader of the Indian National Congress. The strike lasted for over six month during which around 10,000 workers struck work. A crackdown was ordered.] Eventually, two factions emerged; one group of workers desired to return to work while another wished to continue the strike. Violent riots broke out when striking workers prevented the others from returning to work. The riots began to assume communal colours as the workers who wished to continue the strike were mostly caste Hindus while those who desired to end it were largely untouchables or Dalits.

His Reforms

Ramarayaningar introduced a number of reforms during his tenure as Chief Minister. Hindu Religious Endowments Bill

In 1921, the Raja of Panagal introduced the Hindu Religious Endowments Bill. As per this bill, trusts were established to maintain temple funds and given complete power over the administration of temples. This act evoked severe protests from some sections of the assembly which felt that this was an intrusion in the religious affairs of the populace. However, the Shankaracharya of Kanchi gave his support to the bill even while expressing his concern over some of its provisions.

Educational reforms

The Madras University Act was passed in the year 1923. The bill was introduced by Education Minister Sir A. P. Patro. As per the provisions of this bill, the governing body of the Madras University was completely reorganised on democratic lines. The bill asserted that the governing body would henceforth be headed by a Chancellor who would be assisted by a pro-Chancellor who was usually the Minister of Education. Apart from the Chancellor and the pro-Chancellor who were elected, there was to be a Vice-Chancellor appointed by the Chancellor. In 1925, the Andhra University Act was passed which included similar reforms in Andhra University.

However, the tenure of the Justice Party government of the Raja of Panagal is largely remembered for the introduction of caste-based reservations in 1921. In August 1921, the First communal Government Order (G.O. No.613) was passed. As per the order, 44 percent of jobs were reserved for non-Brahmins, 16 percent for Brahmins, 16 percent for Muslims, 16 percent for Anglo-Indians and Christians and eight percent for the Scheduled Castes.

In 1923, M. C. Rajah, a Justice Party leader from the Dalit community protested against the government order arguing that the act did not guarantee adequate representation of Dalits who he felt deserved 30% reservation in the administration and the services. When the Justice Party failed to respond, he resigned from the primary membership of the party.

Dr. Gour's Bill

Dr. Gour's Bill, introduced in 1921, brought about an amendment in the Special Marriages Act, sanctioning the legal validity of inter-caste marriages.

Other reforms

The Raja of Panagal reorganised the Public Works Department in the Presidency, improved medical facilities, water supply and communications in rural areas and patronised Siddha medicine. Sir Muhammed Usman, later minister in the government of the Raja of Bobbili was appointed Secretary of the Committee on siddha medicine. He also sponsored endowments to the University of Madras to produce scientific literature in Telugu.

Later years

Ramarayaningar was made a Knight Commander of the Order of the Indian Empire on 5 June 1926. In the Assembly elections which took place on 8 November 1926, no party was able to get a clean majority. The Swarajya Party won 41 of the 98 seats and emerged as the single largest party while the Justice party won 21.

The Raja resigned as the Chief Minister of the Presidency as the popular verdict appeared to be against the Justice Party. As no party had a clean majority and the Swarajya Party which was the single largest party in the assembly was reluctant to form the government, the Governor appointed P. Subbarayan as the independent Chief Minister and nominated 34 members to the Council to support him.

Death and legacy

Panagal Maaligai or Panagal Building, formerly Chingleput Collectorate, and currently, District Revenue Office, is named after the Raja of Panagal

Ramarayaningar died on 16 December 1928 of influenza. He was succeeded as the President of the Justice Party by P. Munuswamy Naidu.[45][54] On his death, leading newspapers and magazines poured accolades on him. S. Srinivasa Iyengar, a political opponent of the Raja, said of him:

The Rajah Sahib had singular gifts to leadership, tact and of high diplomacy. He had not only led his party with remarkable success but he fought the bureaucracy with even greater skill and courage.

Ideology

Despite his aristocratic birth, Ramarayaningar was known for his egalitarian views. Despite the fact that he was regarded as a communalist and anti-Brahmin, he nominated a Brahmin, T. Sadasiva Iyer as the Commissioner of the Hindu Religious Endowment Board.

References

1. Great Britain India Office (1927). *The India List and India Office List*. London: Harrison and Sons. p. 216.
2. "List of Chief Ministers of Tamil Nadu". Government of Tamil Nadu. Retrieved 20 October 2008.
3. Shakunthala Jagannathan (1999). *Sir C. P. Remembered*. Vakils, Feffer and Simmons Ltd. p. 173. ISBN 81-87111-27-5.
4. Biswanath, Pandey (1977). *Leadership in South Asia*. Vikas Publishing House. p. 253.
5. Geetha, V.; Rajadurai, S. V. (eds.). "Some Non-Brahmin Leaders". *Revolt - A Radical Weekly in Colonial Madras*. Periyar Dravidar Kazhagam. pp. 176-179. Retrieved 22 July 2013.
6. *Who was who: A Companion to Who's who: Containing the Biographies of Those who Died During the Period*. A. C. Black. 1967. p. 811.
7. Nehru, Motilal; Ravinder Kumar, D. N. Panigrahi (1983). *Selected works of Motilal Nehru*. p. 258.
8. Pillai, P. Damodaram. *Gooty Kesava Pillai, a Deenabandhu of South India: A Deenabandhu of South India*. p. 32.
9. Rajawat, Mamta (2004). *Encyclopaedia of Dalits in India*. Anmol Publications PVT LTD. p. 240. ISBN 978-81-261-2084-0.
10. Kesavanarayana, B. (1976). *Political and Social Factors in Andhra, 1900-1956*. p. 299.
11. Inniah, N. (2002). *A Century of Politics in Andhra Pradesh: Ethnicity & Regionalism in Indian State*. Rational Voice Publications. p. 27.
12. Ralhan, O. P. (2002). *Encyclopaedia of Political Parties*. Anmol Publications Pvt. Ltd. ISBN 978-81-7488-865-5.

BANARAS - A HINDU CITY

Sharad Bhatt*

Jaya bhatt**

Banaras the famous Hindu pilgrimage city, religious centre, famous trade and manufacturing centre, centre of the worship of lord Shiva, situated on the Bank of sacred river Ganga had emerged as the centre of Nationalistic activities and movement; and this led me to absorbing question of relation in between the religious and cultural system of the city and the growth of nationalistic fervor there, of the formation of Hindu tradition and culture so characterizing the city and, who and what contributed significantly in forging it, necessitating me to deep dwell upon the religious and cultural past of the Banaras and the collective activities of the individuals who resided within it. Present article is thus concentrated on exploring the religious and culture system of Banaras prevalent in the 18th and 19th century.

R.E, Park, one of the pioneers in the urban studies, defined 'city' as- "The city is a state of mind, a body of customs and traditions, and of unorganized attitudes and sentiments that inhere in those customs and are transmitted with this tradition."¹ And the city Banaras, which from its alleged founding in the sixth centuries B.C, grew to be one of the north India's largest by the early 19th century, befits the definition completely. Banaras relied on a strong sense of identity. As the principal focal point of Hindu pilgrimage and the leading centre of Brahmin ritual observance, Banaras has been associated with Hindu religious sympathies throughout its existence.² Not only it has drawn enormous number of visitors throughout the year and on special occasion, but was perceived as the centre of the world, the place of creation, the holiest spot on earth, the ultimate destination for all Hindus.³

Reinvented Hindu tradition and reformulation of Hindu culture in Banaras under the patronage of local powers came to be established in 18th century with the demise of centralized Mughal influence and power. Under the influence of centralized Mughal empire which had dominated north India for two preceding centuries, in the early 18th century, like many of the other 'celebrated holy places such as Prayag (Allahabad) and Ayodhya, Banaras had been a "mughalizing city" owing much to the cultural patterns established first by the Mughals and then fostered by the nawab of Awadh's court. With the ebbing of power and influence of the centralized Mughal empire, 18th century Banaras witnessed the rise of the Raja as the regional ruler of the area, growing economic and political power of merchant-Banker and mendicant trader-soldiers (Gosains) along with the growing cultural interest and investment of Marathas in Banaras which, unlike that in other mughalizing urban centres in north India, had effected changed cultural system and pattern in Banaras city, so that by the early 19th century, a Hindu tradition had been reinvented.⁴ This triad of power holding group-Raja, merchant Banker and Gosain - was found together patronizing and investing heavily in the Hindu cultural and religious activities.

After 1680 the marathas replaced the Rajput - donors to the 'thirthsthalas' the three holy spots Banaras, Allahabad and Gaya. It was the Peshwas's interest and the enormous investment in constructing brahmpuris, residential quarters for dependent Brahmins and the Ghats and temple which endowed the city with its special character.⁵ With Peshwas,

*Assistant professor, Dept. of History, P.G. College, Bageshwar

**Assistant professor, Dept. of History, P.G. College, Bageshwar

Maharastrian Brahmains also settled there. By the end of 18th century, Maratha emigrants in Banaras came to number almost 30,000 people and included traders (Naik and Sipahi, Nagar Bankers, Deccani Brahmins) and the retainers of the many nobleman who temporarily or permanently resided in the city.⁶

Reflecting their intellectual as well as their trading interest there,⁷ Marathas financed much of the eighteenth century Hindu reconstruction of the city, which encompassed dharmshalas (resthouse) for pilgrims, temples, Bathing ghats along the river front feasting to support Brahmin priests, and a balance for themselves and their local and agents.⁸

Through the scope of operation and with that the position of the merchant community narrowed and declined over the decades. With the establishment of British paramountcy in the early decades of the 19th century and the beginning of the colonial state the status of mercantile formations altered considerably.⁹ The profit accruing to the bankers from money changing and revenue handling ceased with the new system of finance and administration. However merchants got profited from the change in the land owing pattern which followed the permanent settlement and emerged as a new class of land holders with the civil servants and their descendents.¹⁰

Traditional formations remained intact, the Jati panchayat continued to function till well in to the early decades of this century.¹¹ Most of the prominent merchants participated actively in the Dharma sabha established by Maharaja Ishwar Narain singh of Banaras in late 60s of the 19th century. Sheo Lal Dube, who acquired the title of Raja of Jaunpur the archetypal new Hindu magnate, instigated the first recorded move to have cow slaughter banned in the city limits.¹² The Gosain who were the ¼ of the city inhabitants in the early 19th century,¹³ with their religious connection, economic prowess and militant character had pivotal contribution in protecting, patronizing and consolidating Hindu religion and tradition in the city.

While being entirely relieved of any administrative duties; Raja with full support and protection of British through unfurling their cultural and religious activities, supported heavily to re-articulation of Hindu tradition in the city. From Raja Chet Singh to Ishwar Narain Singh, ruling Hindu dynasty of Banaras patronized and protected Hindu culture with the expanding role and participation in the cultural and religious activities - (i) Construction of temples, tanks, patronage of local customs and rituals, (ii) patron of festive activities, lavish celebration of festivals and fairs, (iii) patronizing religious tradition-(iv) patronage and encouragement to writers, literary activities, sanskrit learning. They employed a number of pundits.¹⁴

Together the triad - Raja, merchant Banker and Gosains, shaped the Hindu culture and tradition so successfully that it integrated those who resided in the city in a way that came to be visually unparalleled in urban North India.¹⁵ Thus the 'Hinduness' they evolved contributed largely to the religious authority of the city.

The story of reinvented and reformulated Hindu culture and religion that came to characterize Banaras cannot be completed without considering the substantial role played by Brahmin who constituted sizeable portion- around 12% according to an estimate given by James princes who was assay master in Banaras for 1819-30 and were the main learner of the Hindu traditions, in constructing puranic tradition of the city. Brahmin dominated the older public sphere by virtue of their ritual activity in temples and by taking part in the great Sastrarthas, the learned debates, which were to acquire renewed fame in the 19th century and enjoy the patronage of both the Raja and merchants.

Early 19th century sources refers to an array of collective ceremonial activities expressive of shared Hindu cultural assumptions and values most of which were religious. Their subject matter was religion, as the observance frequently reenacted stories from the

sacred text. Events like "the marriage of the Laut (Bhairav), 'Bharat- milap' (connected with Ramlila), the day to day observance related to particular figures and shrines, were the general celebration shared by thousands of people including Muslims too.¹⁶ Like wise in the 19th century, devotional tradition of Vallabh sampradaya was prominent representational public arenas of the city.

Ramnagar Ramlila emerged as a preeminent cultural expression of the integration between Raja, Hindu merchants and mendicants. By virtue of its thirty one days length and its patronage by dynasty, this Ramlila retains to the present "the most extensive, best performed and draws the largest audience of any" Ramlila in subcontinent.¹⁷ While the Maharaja is cheered as a god in the Ramlila, Rama is cheered as a king.....Usually the maharaja on his elephants forms one of the spatial limits of the scene, with Rama forming the other. Both maharaja and Rama are elevated, and the audience is on ground level, assembled between them."¹⁸ Given the close interrelationship of upper and lower classes in Banaras,¹⁹ this Vehicle of high Hindu culture was rendered palatable, even essential through the dominant role played by the local ruler, with whom all Banarasis could identify, through whom all communities became symbolically integrated. Symbolic structure thus forged become suggestive of collective shared value represented in public space, and also the culturally. continuous mode and alliance of protest. This was best reflected in the community riots, protest and conflict taken place in the coming years in Banaras, where communities were found clustered around the symbol of religion. Conflict and associations found expression through a religion focused symbolic vocabulary, as reflected in the Hindu Muslim riots of 1809 in Banaras.²⁰

During the house tax hartal of 1819 in Banaras, Banarasis had emphasized on prominence of shastras, ancient customs and values against British rules and regulations.²¹ Effective control and stronghold of panchayats on its members in regulating them and in maintaining order and system during hartal was observed. In fact, the way Banarasis protest against the imposition of house tax reflected a society more culturally and religiously integrated than that of any other urban centers in U.P. During 1897 protest, merely apprehension of endangered existence of temple due to the construction of water pump nearby, led to the massive protest joined alike by all the classes of Hindu population of Banaras.²²

During the course of nationalist struggle against British rule in 19th century Banaras participated actively and emerged as a centre of Hindu nationalist response to colonialism. So it is the process of protecting ,emphasizing and patronizing Hindu religion and culture - began in 18th century and got consolidated and strengthened over the years in following decades that proved contributory in the emergence of Banaras as a major centre of traditional rearticulating of Hinduism as a part of the nationalist movement.

References :

1. The city: Suggestion for the investigation of Human Behaviour in the Urban Environment ; American Journal of Socialogy, xx (19), pp=517,612
2. Calcutta Review, 1864, P=24
3. Eck , Diana : Banaras- city of light, London, 1983, pp=5-6
4. Bayle, C.A. : Rules, Townsmen and Bazaars - North Indian Society in the Age of Cambridge University Press, 1983, P=137. British Expansion - 1770- 1870,
5. Gordon, Stewart : The Marathas 1600-1818, Vol. 2/4 of the New Cambridge History of India , ed . Gordon Jonson, Cambridge University press, p-146
6. Bayly, C.A. : Rules, Townsmen and Bazaars - North Indian Society in the Age of Cambridge University Press, 1983, P=137. British Expansion - 1770- 1870,
7. Singh, B.N. : Benares, a Handbook prepared for the Indian Science Congress . 28th session.
8. Bayle, C.A : Op.cit, 1983, P=123

9. Dalmia, Vasudha : The Nationalization of Hindu Traditions ! Bhartendu Harishchandra and 19th century Banaras, New Delhi, 1996, P=92
10. Ibid
11. Ibid, P=93
22. Proceedings of the Resident of Benaras, (33.II,23July,19August1790) Uttar Pradesh State Archives, Allahbad.
13. The Magistrate in the early nineteenth century counted the Gosains as "One fourth; to reach the figures he must have included all those who appeared to be mendicants. (Kloff, D.H.A. -" Sanysi Trader- soldiers", Indian Economic and social Histroy review 8, 1971)
- 14: Dalmia, Vasudha - op.cit, 1996, pp.70-182
15. Delhi represented a similar phenomenon but one perhaps much mopre depend on the strength of the mughal power. (see Fry Kenberg, R.E, ed., Delhi. Through the Ages: Essays in Urban Histroy, culture and society, Delhi, 1986). Lucknow presented a regionally focused phenomenon closer to Banaras, but, ultimately short lived. (Olderberg Veena: The making of Colonial Lucknow Princeton, 1984).
16. Kumar, N itya:The Artision of Banaras- Popular Cuiture and Identity, 1886, New Delhi, (1988), 1995, p-23.
17. Schecher, Richard and Hinda Hess! "The Ramlila of Ram Nagar," Drama Review 21, 1.no, 3:51-82,1977
18. Schecher,Richard and Hinda Hess: Ibid, 1977, 69, 74.
19. Kumar Nitya: cit.opp, (1988), 1995, New Delhi.
20. Freitag, SandriaB. (ed) = Culture and Power in Banaras Community Performance and Environment (1800-1980), chap 7.e ' state and Community', pp210-213.
21. Ibid, pp, 215-220
22. Ibid, pp 220-224

STRESS MANAGEMENT

Prof. Dr. Satish G. Ghenekar*

Strain is simply known as Stress. It cannot be eliminated, it can only be reduced. The main objective of stress management is to reduce stress at minimum possible level. Stress may come through external demands and pressures and internal demands and pressures. Stressors may be generated from family, individual, social, environmental, financial, work. The internal demand and pressures may come from responsibilities, obligation and self-criticism. Stress may be physiological and psychological. Psychological stress is more critical than physiological. Psychological stress is more critical than physiological stress.

The degree of stress depends upon the perception of an individual. Each individual differs from others in a attitude, beliefs, values and past experience. The result of stress whether at home or at work are-accidents, absenteeism, reduced productivity, poor moral, impaired decision-making, increased health care cost, office conflicts, rising compensation claims, cost mistake and high staff turnover.

The influence of stress on physical and psychological well being is well documented. Stress has been implicated in heart disease, eating disorder, insomnia, ulcers, accident proneness, cancers, decreased immunity, chronic headache, diabetic, depression, substance abused, chronic pain, irritable bowel syndrome and chronic fatigue.

Stress is not the same for all people and one approach will not work for all. Everybody is convinced that stress should properly be managed at its minimum level. But next question follows how? How to manage stress? There are different methods evolved by different scholars and have given different models of stress management. Stress is more psychological phenomenon and this could only be managed psychologically.

Stress Management: According to Dr. Allan Alkin the Director of Stress Management Counseling Centre, New York, grief, anxiety, tension, etc. are bitter truth of our life but it does not mean that a person always remains in anxiety and tension. We do not have control on everything happening in our day to day life. So one has to behave peacefully and not to react adversely. Stress will cause damage to our physical and mental balance. It will produce insecurity, sadness and different kinds of disease. If we remain happy and free from anxiety, we can enjoy our life. So it is better for the physical and mental health, one should know about better stress management-

There are certain techniques which can reduce stress very effectively

Deep Breath: A better way to relax is to take deep breath to get rid of stress. The process is known as "Anulome vilome" i.e. to inhale and exhale breath. It balances our whole body and the body becomes light and relaxed. (Report: Hindustan 2008)

Utilization of Imagination Power: Research studies testify that it is very better to imagine and visualize good things. This will help a person to relax to a greater extent. There are many other ways such as to sit in a park, at sea side, listen to music, enjoy good smell and the like.

Massaging and Oiling: Steam bath, massage and oiling are very useful in relaxation. Several nerves became relaxed by massaging. In stress, massaging and oiling will have positive effect on relaxation.

*Limca Book of Recorder, J.S.P.M. College of Physical Edn. Pusad, Dist. Yavatmal (M.S.)

Good Tonic Supplement: There are different kinds of Ayurvedic supplement to reduce stress. Generally, such tonic are vitamin B complex, iron, folic acid and vitamin E. These supplements are better ways to get relaxed, but it is very essential to consult a doctor before using such tonic and vitamins.

Laughter: Laughter has a great impact on tension reduction. A positive energy is generated and the individual becomes happy. Actually, facial nerves are triggered which influence the limbic system of brain which ultimately maintains the neuro-chemical balance. The neuro-chemical balance helps in reduction of stress.(Report: Sanmarg 2005).

Ranking of problems: If a person has a lot number of problems, he may be stressed due to over load with the problem. If he categorized all the problem, according to severity, he will be able to solve all the problems one by one. This will also help a person to reduce his stress. (Lakin 1973).

Chanting Mantra: Chanting Mantra's and "Om" has a great impact on relaxation Chanting Mantra will cause some sort of concentration which will help in reducing stress. (Kabasa 1979). It helps to develop positive feeling and increase in self-confidence. In this way, chanting Mantra's will make a person happy and tension free.

Doing Exercises: Doing exercises like keeping the whole body straight and bending at a 45o angle from up to down. Putting one's hand straight horizontally and folding hand slowly. Doing all such exercises for at least half an hour every morning and deep respiration in open air is beneficial in overcoming stress.(Atmanand, 2004).

Remitting Sorrow: Physicians and psychiatrists say that a person is suffering from guilt feeling, he develops stress. The person feels sorry about what he has done. He feels helpless and dejected situation thinking positively will help him. This attitude will help a person to fight with the adverse situation and ultimately reduce stress.

Engaging in creative work: To reduce stress, the best way to do some constructive work like writing one's own tension in diary, painting, singing, drawing etc. These activities will eat to positive feeling and negative ideas will automatically vanish.

Getting Married: A research study study in Pennsylvania university America supports that if a person is single he is more tensed and filled with negative feeling. If a person is married, he is less unhappy because he is being emotionally supported by his life partner.

Avoiding Intoxicating Agents: Initially, an individual takes drugs and alcohol to reduce stress but gradually all such items will harms him and that is not the final reedy of stress. So, it is essential to give up all such habits gradually by taking vitamin, glucose, chocolate powder or any other soft drink.

Avoiding over ambition: Some people try to achieve desired thing very hurricanely, but it is more harmful than beneficial. It is better to understand one's own capacity and limitation; this will help in reducing stress. (Hidustan, 2003).

Exercising acupressure: Acupressure specialists have pointed out several points in human body. If such points are pressed at the time of stress, it can be reduced e.g. centre point between both eyebrows left and right spinal cord near neck tip of the finger and tip of the toes. Acupressure specialists are at home in reducing stress through their special technique.

Think About sex: Life today is very busy and full of stress, if someone in such a condition thinks less about sex it will definitely reduces a great amount of stress. In such a case, a hormone named endogen increases its amount in blood that will help in relaxing a person. So, for relaxation sex plays a vital role.

Walking: Walking is very good exercise. It can reduce stress by supplying air to lungs appropriate blood circulation and oxygen level in the body.

Taking bath with hot water: Taking bath with hot water is a good way to reduce stress. But while taking bath, one should imagine that his stress is vanishing with hot water.

Keeping pets: Different studies have shown the importance of pets in human life for blood pressure, tension and heart disease. It has been found that stress is released by playing for them.

Listening Music: Researches support the fact that listening music or singing oneself is the best way to reduce stress as the proverb says that " Phate kaleja gao geet, dukh sehne kii ek hi reet". It will act as penance for reducing stress.

Talking on Telephone: It is better to talk on telephone to friends and relatives and to share own problems. It is found that expression of feelings helps us to reduce stress. (Cobb, 1976). Sigmund Freud too stressed on catharsis i.e. release of pent up feeling.

Organizing party and excursion: Stress is sometime product of boredom and monotony. So, it is essential to organize party and excursion to avoid monotony and boredom e.g. watching, going to a restaurant, fairs, cafeterias, etc.

Practicing Yoga and Pranayam: A present scenario, it is better to do pranayam and yoga to reduce tension and becoming stress free. It will support in good health also. (Muchal, 2007)

Self Analysis: If a person understands himself and others well, he does not feel tension about anything. It is also important to analyze each and every situations, happening in life and searching an appropriate situations, If the outcome or conclusion is reached, then there will be no tension no stress. (sanmarg, 2005)

References :

1. Report: "Ati Mahatwakanch Bhi Hai Hanikarak", Hindustan, Nai Dishayein, 8 July. 2003, Patna.
2. Report: " Mahatwakancha Bhi Deti Hai Mansik Tanaw", Dainid Sanmarg, Sanjwani, 15 Sept., 2005, Kolkata.
3. Report: "Sex Apko Thirghau Bana Sakta Hai" , Hindustan, 14 Feb, 2006 Patna
4. Report: "Sangeet Sune Aur Beemariyon Ko Door Bhagayein" , Dainik Sanmarg, Sanjiwani, 27 Oct., 2005, Kolkata.
5. Report: "Tanaw Rahit Jeevan Sukh Ka Sar Hai." , Dainik Sanmarg, Sanjiwant, 29.09.2005, Kolkata.
6. Selye, M. (1957) The stress of Life; New York: Mc. Graw Hill.
7. "New Horizons in Stress Management" :Dr.Sadique Razaque, 2011 New Delhi.

THE ARCHETYPAL EXEMPLAR IN ANITA NAIR'S MISTRESS

Dr. Shalini Dube*

Abstract: This paper explores the archetypal exemplar in Anita Nair's *Mistress*. Radha is the heroine of the novel who is modern, educated, sensitive and intelligent. A glimpse of her novel divulges how touchingly she expresses the frustration and disappointment of a modern woman through conventional examples from epic like Mahabharata, who is experiencing social and cultural subjugation in the male-conquered society. *Mistress* has cloaked women crossways cultures from the nub of her plots, self-questioning and suppressed grievances. Key words: self-esteem, silence, maternity, sacredness, relationship, love, patriarchal conspiracy, cheat.

Mistress by Anita Nair is an excellent novel where she has gathered the all human emotions love contempt, sorrow, fury, valour, fear, disgust, wonder and peace together. Nair's *Mistress* is greatly influenced by Unnayi Warriar's *Nalacharitam* it depicts the story of Nala and Damayanthi. In Mahabharata, sage Brihadhaswan narrated the story of Nala and Damayanthi to Dharmputra to exemplify the unfortunate turn of events which has been explained in the chapters 52 to 79 in *Vanaparvam*. Unnayi Warriar, in 18th century, arranged the contents of this story as *Nalacharitam Attakatha* for the art form of Kathakali, to make it more dramatic and full of action. This *Attakatha*, is so long that it has been divided into four parts-First, Second, Third and Fourth Day. Thus, Nair has included the First, second and Third Day in her novel as Book 1,2 and3.

Mistress is based on the ancient dance form of Kathakali. The three parts Book 1,2 and 3 contains three rasas in each. The first part Book 1 includes the first day of *Nalacharitam*. Koman is a kathakali dancer and Chris is a travel writer. He comes to India to interview Koman about his experiences as a kathakali dancer. Radha, Koman's niece is as beautiful as Damayanti. Chris or Christopher Stewart was also attractive like Nala. Both Chris and Radha were attracted to each other as if they were the perfect couple.

If Nair entitles Chris and Radha as Nala and Damayanti, then Shyam is Keechkan or Bheema. He is like Keechakan who saved the honour of Vidardha by keeping its sacredness through his dexterous battle strategies. Keechakan was enraptured by the beauty of his sister's handmaiden Sairandhari. She disliked and hated him while he thought it was her pride and he would definitely succeed to break it. The novelist also compares shyam with Bheema whose wife befooled him due to his awkwardness. She sent him to find the divine flowers to keep him away. It was then eight years since Radha and Shyam got married. Radha never realized the goodness of his heart and made use of him just like Sairandhari the Bheema's wife. For Radha, Shyam was Keechakan and Bheema.

In the present novel, the two stories move simultaneously together one of Radha and the other of Koman's. The novelist presents the two couples Radha and Chris, and Saadiya and Sethu as the suitable couple for each other. Saadiya was Koman's mother and Sethu fell in love with her at the first sight of seeing her out at the common alley which led to the road.

*Prof. and Head, Dept. of English, Govt. T.R.S. College, Rewa, M.P.

The author has portrayed Nalacharitam's First Day through the three rasas Sringaram (love), Haasyam (contempt) and Karunam (sorrow). The very first line of Book 1 from Nalacharitam indicates the incomparable handsomeness of Nala and beauty of Damayanti. Radha always bore the dissatisfactory mark on her face. She had two reasons for not loving Shyam, one was that her marriage was arranged with him in a compulsion and the other was that she had no trust on any marriage due to her past experience of life. Chris was a bachelor and had no girlfriend. Therefore, Radha chose him as the right man to love. The novelist describes Chris as, "Chris, he is the hero. Nala to her Damayanti. Arjuna to her Subhadra. Krishna to her Radha." (Mistress p.34) Although the given examples of couples are married, yet the perfection in the love of Radha and Chris surpasses the need of marriage.

Anita Nair is a novelist who leaves no stone unturned to glorify her woman characters. In her *Mistress* she has sanctified the love of Radha and Chris like Radha and Krishna in the Mahabharata. Nair's Chris and Radha are like Duryodhana and Bhanumati in Uttara Swayamvaram. The novelist compares Radha's intensity for longing for love with that of Bhanumati's. She rightly says, "The completeness of desire. Chris and Radha. I feel humbled by the intensity of their intimacy." (Mistress p.128)

The love story of Radha and Chris is a supplication of Radha-Krishna and Nala-Damayanti in Hindu mythology. As Jaydeva says in *Gita-Govinda*, "If Krishna was the God of Love, Radha had to be Rati, passion personified Together with his consort Krishna was complete."¹

Mistress is an effort to repossess Radha's archetypal story through a feminist outlook. Radha's discontentment in her married life compelled her to get attracted to Chris and resulted in their union. Love can never be imposed but it itself makes its place in one's heart. Shyam's love for Radha was an enforced liability which she had been carrying for nine years. Thus the union of Radha and Chris was obvious as it demanded no compulsion like liability. The love between Radha and Chris required nothing except love.

It is very encouraging to remind that Anita Nair after venturing with the intricacies of inner self is fringing towards depression and anxiety. Her reconciliation with environment and 'self' is clearly seen in her novel. At this Vinay Kripal points out, "the third world writer, witness to his own social reality and history should draw upon a shared and common experience by constantly moving between the contemporary and the traditional."² Other than Chris and Radha, the story of Sethu and Saadiya move concurrently. Sethu was an orphan who started working with Dr. Samuel as his assistant. Saadiya Meherunnisa was the descendant of the original Kahirs and daughter of Hazi Najib Masood Ahmed. She left her father, mother, brother and sisters for Sethu.

She went against the traditions and customs of her Islam religion. Radha forgot about her husband and indulged herself with Chris as Nala and Damayanti got married despite all the obstacles created by gods. The reason behind the revolt of these women was true love.

The Indian history and mythology witness that women cannot be suppressed for a long time. Nair's female characters are the representative of modern women. Radha and Saadiya achieved their goal. The male characters in the novel have been presented weaker than the female characters and instead of men women are taking decisions independently.

Radha was hiding her love for Chris from Shyam and concealing of the fact has not been considered false by the novelist. On its contrary she presents another example of deception from Ramayana. The first deception was that Bali was blessed with the opponent's power during the battle by his father Indra. During the battle between Bali and demon Dundup the demon deceived Sugriva by calling his (Sugriva) name like Bali. Sugriva thought

his brother was killed by the demon. The third deception was that when Bali returned and called his dear brother a traitor. Rama had to kill Ball by hiding himself away from the battlefield. This was the fourth deception. Shyam thought he was strong enough to achieve everything like Ravana. Yet he forgot that even Ravana had to be defeated. Thus the ego and overconfidence of Shyam were to be demolished by Radha, his wife.

In Book 2 the novelist depicts the love story of and Chris through the rasas Raudram (fury), Veeram (courage) and Bhayaanakam (fear). Nair compares their love with Radha-Krishna and Nala-Damayanti, Radha later finds her love for Chris was not spiritual but sexual. She had initially considered her love above than the common understanding of adultery and sex. She firmly comments, "My love was neither murky nor rnak. My love rose above the sludge of conventional adultery...my love grew amidst music and words, and a thousand buds." (Mistress p.398)

The feelings of Bhayaanakam and Beebhatsam occupied her mind and made her feel disgusted about her unbridled desires of her body. In Mistress the novelist focuses how the female body shifts from devotion to defiance. Draupadi as Sairandhari makes use of her husband Bheema for getting rid of Keechakan as a modern woman Radha herself had made her condition favorable for becoming happy. Like Draupadi as Sairandhari, Radha had both Chris and Shyam who dearly loved her. Radha has been presented as more powerful voice.

The third part of the novel compiles the three rasasa Beebhatsam (disgust), Adbhutam (wonder) and Shaantam (peace). In the Second Day of Nalacharitam Nala and Damayanti were cheated by Kali through Pushkara (Nala's brother). Radha was also misguided by the feeling of true love for Chris. Nair compares her love for Chris with the divine love of Radha-Krishna and at the same time compares it with the tricks of kali who tried to spoil the happy married life of Nala and Damayanti. Shyam dearly loved Radha. He could have stopped her from loving Chris but he had full faith in his love. In Nalacharitam, on the Third day Nala's true love and Damayanti's devotion help them to reunite after a long time. Damayanti identifies identifies Bahukan as Nala and king Rithuparna's chariot driver and cook. Radha also identifies the truthfulness of her relationship with Chris which was merely sexual and physical. Like the thought of the Third Day of Nalacharitam, "For the rest, you are the architect of your own fate" (Mistress p.85) Radha decides to take her decision by herself. The novelist writes:

The child in Radha grows... she leans back in the rocking chair. She has time enough to think of what she wants to do with her life. She has time to count enjoys and blessings. She has time. (Mistres p. 426)

Amusingly, Mistress does not disclose the next step of Radha whether she reunites with shyam or Chris, is not revealed or will decide to remain alone. Nair has left this thought on her readers to seek Radha's further decision.

References:

1. Varma, Pavan K. 2001; The Book of Krishna. New Delhi: Penguin,
2. Kripal, Vinay. 1988; "What is the Modern Third World Novel? Journal of Commonwealth Literature, xxiii:i., p.p. 145-155.
3. Nair, Anita. 2005 ; Mistress. New Delhi: Penguin Books India,
